संस्कृत महाकाव्यों में नारी की राजनीतिक भूमिका

(बाल्मीकीय रामायण तथा व्यासकृत महाभारत के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की
पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

2002
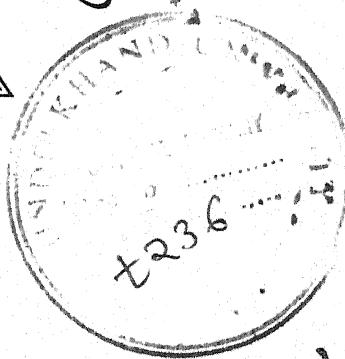
इन्दु सक्सेना

निर्देशक :
डॉ. रिपुसूदन सिंह
(वरिष्ठ प्रवक्ता)
राजनीति विज्ञान विभाग एवं शोध केन्द्र
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई

प्रस्तुति :
श्रीमती इन्दु सक्सेना
एम.ए. (राजनीति विज्ञान)

शोध केन्द्र : दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई (उ.प्र.)

निर्देशक प्रमाण पत्र

(Supervisor's Certificate)

अत्यन्त हर्ष के साथ प्रमाणित करता हूँ कि श्रीमती इन्दु सक्सेना का **"संस्कृत महाकाव्यों में नारी की राजनीतिक भूमिका"** विषयक यह शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी–एच. डी. उपाधि हेतु मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दिनांक : 20-04-2002

(डा. रिपुसूदन सिंह)

वरिष्ठ प्रवक्ता

राजनीति विज्ञान विभाग एवं शोध केन्द्र

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

अनुक्रमणिका

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आधार रामायण एवं महाभारत के रचयिता क्रमशः महर्षि बाल्मीकि एवं उनकी शिष्य परम्परा तथा महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास, उनके शिष्य जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, सुमन्त तथा उग्रश्रवा सौति और अन्य परवर्ती सूतों की परम्परा के मनीषियों को सर्वप्रथम नमन करती हूँ।

अपने परिवार के बौद्धिक वातावरण की आभारी हूँ, जिसमें मेरा बाल्यकाल बीता। घर में होने वाली तार्किक, बौद्धिक चर्चा कुछ समझ में आती और कुछ नहीं किन्तु धीरे–धीरे इतना स्पष्ट होता गया कि पुस्तकों में जो लिखा होता है वह विवादोपरि परम सत्य नहीं होता, विभिन्न विद्वानों के अपने–अपने मत होते हैं। डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त ने मन में गहरे तक बिठा दिया कि यह दुनिया जैसी आज है वैसी पहले नहीं थी और भविष्य में भी ऐसी नहीं रहेगी।

बाद में पता चला कि बौद्धों का क्षण भंगवाद भी तो यही कह चुका है। घर में अनुवाद सहित रामायण–महाभारत की पोथियाँ थीं। उन्हें भी पढ़ने का सुअवसर मिला। विश्व इतिहास के पन्ने पलटते–पलटते स्पार्टकस के नेतृत्व में दासों के प्रेरणास्पद मुक्ति संग्राम को भी जाना। जान ऑफ आर्क और झाँसी की रानी के अमर आत्मोत्सर्ग की गाथाओं ने नारी की मुक्ति कामना तथा राजनीतिक भूमिका के महत्व को भी रेखांकित किया। इसी पारिवारिक पृष्ठभूमि ने प्रस्तुत विषय पर कार्य करने को प्रोत्साहित किया।

पिताजी के अभिन्न मित्र, गान्धी कालेज उरई के मनोविज्ञान के विभागाध्यक्ष श्री श्याम सुन्दर जी मिश्र से तो समय–असमय सदैव मार्गदर्शन प्राप्त करती रही हूँ। उनका वैदिक वाङ्मय तो मुझे सदा ही उपलब्ध बना रहा। उनके प्रति सदैव आभारी रहूँगी।

शोध प्रबन्ध के निदेशक डॉ. रिपुसूदन सिंह की अनुकम्पा, निर्देशन तथा

मार्गदर्शन के पाथेय के सहारे ही शोध मार्ग पर चलने में समर्थ हो सकी। उनके प्रसाद के अभाव में कदाचित यह कार्य पूरा हो ही न पाता। उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ और उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में जिन विद्वानों के विचारों तथा ग्रन्थों से सहायता ली है, उनके प्रति भी आभारी हूँ। डी. वी. कालेज उरई के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा उनके सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। उन्होंने सदैव सहायता प्रदान की। शोध प्रबन्ध को कम्प्यूटरीकृत करने और सुन्दर पुस्तकाकार रूप देने में श्री योगेन्द्र कुमार स्वर्णकार और उनके सहयोगियों ने सराहनीय परिश्रम किया है। उन्हें भी धन्यवाद देती हूँ।

उन सभी महानुभावों को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने यथा अवसर किसी न किसी रूप में मार्गदर्शन तथा सहायता प्रदान की।

इन्दु सक्सेना
(श्रीमती इन्दु सक्सेना)

संकेत

ऋ . – ऋग्वेद

अ . – अथर्ववेद

(ऋग्वेद से सन्दर्भ लेते समय पहले ऋ. अक्षर फिर क्रम से दशमलव बिन्दु ., मण्डल संख्या . सूक्त संख्या तथा अन्त में मंत्र संख्या दी गई है। अथर्ववेद के लिये पहले अ अक्षर फिर दशमलव बिन्दु ., सूक्त संख्या . एवं अंत में मंत्र संख्या दी है। एक से अधिक मंत्र होने पर यदि लगातार हैं तो पहले मंत्र और अंतिम मंत्र के बीच की पड़ी रेखा (–) खींची गई है। अलग–अलग मंत्र होने पर मंत्रों को अल्प विराम (,) से अलग किया गया है।)

महा . – महाभारत

(सन्दर्भ देते समय पहले क्रमशः महा . , पर्व संख्या . अध्याय संख्या . अंत में श्लोक संख्या कई श्लोक होने पर वही विधि अपनाई गई है जैसी वेद मंत्रों के साथ अपनाई गई है।

रामा . – रामायण

(सन्दर्भ देते समय क्रमशः रामा . , काण्ड का नाम . सर्ग संख्या . तथा अंत में श्लोक संख्या)

भाग . – श्री मद् भागवत पुराण

(संदर्भ क्रमशः भाग . स्कन्ध संख्या . अध्याय संख्या, श्लोक संख्या)

अन्य पुस्तकों के संदर्भ में पहले लेखक का नाम, पुस्तक का नाम तथा बाद में पृष्ठ संख्या दी गई है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची में प्रकाशक का नाम तथा संस्करण का वर्ष भी दिया गया है।

प्रस्तावना

प्रस्तावना

परिवर्तन—यथास्थिति का द्वन्द्व

इक्कीसवीं शती तथा तीसरी सहस्त्राब्दी के ऊषा काल में उत्तर आधुनिक अथवा उत्तर औद्योगिकी की वायु सम्पूर्ण मानव परिवेश को स्पन्दित कर रही है। सर्वत्र परिवर्तन के कलरव गूंज रहे हैं। साथ ही यथा स्थितिवाद की शंख ध्वनि एवं अजान भी निहित स्वार्थियों एवं धर्मस्थलों के कंगूरों से निनादित हो रही है। नारी समाज पर भी इन दोनों का प्रभाव पड़ रहा है। एक ओर नारी पुरुष के कंधे से कंधा भिड़ाकर, कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने को कृत संकल्प है, दूसरी ओर निहित स्वार्थी मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं। धार्मिक ग्रन्थों, रूढ़ियों, परम्पराओं के रूप में महत्वपूर्ण रोड़े उनके हाथ लग गये हैं। जब कभी नारी करवट लेने का प्रयास करती है तभी उसे धार्मिक प्रवचनों, धर्म ग्रन्थों के उद्धरणों, कर्मकाण्डों की थपकी देकर सुलाने का प्रयास किया जाता है।

राजसत्ता और धर्मतन्त्र, परिवर्तन और यथास्थिति बनाये रखने के दो महत्वपूर्ण उपकरण हैं। अपने भविष्य को संवारने के उद्देश्य से नारी अपनी राजनीतिक भूमिका के प्रति सचेष्ट तथा सावधान हो रही है। इसी सन्दर्भ में वह धर्मतन्त्र को 'अफीम' समझ कर उसके प्रति उदासीन रहने तथा उपेक्षा करने की भूल नहीं कर सकती। अपनी मुक्ति के लिये उसे राजसत्ता के साथ—साथ धर्मतंत्र में भी अपनी हस्तक्षेपकारी भूमिका को नहीं भूलना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये संस्कृत महाकाव्यों, जो हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं, में नारी की राजनीतिक भूमिका का महत्व है। सदियों से दबी—कुचली, धार्मिक रूढ़ियों की दासी नारी आज कैसे और किन—किन अवस्थाओं को पार करती हुयी उस पड़ाव तक आयी है जहाँ से वह पीछे मुड़कर प्रागैतिहासिक काल की पगडंडी और उसके किनारे डाले गये शिविरों के खण्डहरों को अपने विवेक चक्षुओं से देख सकने का साहस और सामर्थ्य जुटा सकी है, इसका अध्ययन युग की महती आवश्यकता है।

पूर्व वैदिक काल के स्त्री–पुरुष समानता के युग[1] की भित्ति उत्तर वैदिक काल तक पहुँचते–पहुँचते जर्जर होने लगी।[2] जैसे–जैसे काल चक्र घूमता गया वैसे–वैसे नारी घर–बाहर सर्वत्र करणीय–अकरणीय के मकड़जाल में फंसती चली गयी।[3] मध्यकालीन सामन्ती युग में नारी लगभग व्यक्तित्व विहीन हो गयी। उसकी तुलना पशुओं तथा जड़ पदार्थों से की जाने लगी।[4] योरोप में पन्द्रहवीं शती में जड़ सामन्ती युग की लम्बी रात्रि के अवसान के लक्षण प्रकट होने लगे और पुर्नजागरण की लालिमा योरोप के क्षितिज पर छाने लगी।[5] नव प्रभात की नई बयार बहने लगी, जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अंगड़ाई लेने लगा।

इस प्रभाव से नारी भी अछूती न रह सकी। पुनर्जागरण ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। यह पुर्नजागरण शून्य से उत्पन्न नहीं हुआ था और न किसी दैवी प्रेरणा का परिणाम था। यह तत्कालीन परिस्थितियों में मानव अध्यवसाय, लगन तथा बौद्धिक क्षमता का सुपरिणाम था।

पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि

अत्यन्त प्राचीन काल से यहाँ तक कि हड़प्पा तथा वैदिक युग से ही भारत का व्यापार मध्य पूर्व, पूर्वी अफ्रीका, यूनान–रोम से होता आया था।[6] चीन और योरोप के बीच भी प्रसिद्ध रेशम मार्ग से व्यापार होता था।[7] सातवीं शती तक यह व्यापार श्रृंखला बनी रही। क्षणिक व्यवधान आये–गये, किन्तु इस श्रृंखला को तोड़ न सके। इसी शती में

---

(1) ऋ. 4.17.16; ऋ. 10.191.2–4; अ. 3.8.5; अ. 3.30.3–6; अ. 20.126.10; अ. 6. 64.1–3; अ 7.52.2; अ. 7.94.1; ऋ. 10.123.3,5,6; ऋ. 10.86.10

(2) ऋ. 1.62.10; अ. 18.3.57; अ. 6. 22.3

(3) मनु. 5.149–165

(4) तुलसीदास : रामचरित मानस.किष्कि. दोहा 14.7; लंका, 15.2,3, आरण्य. 16.5,6

(5) फर्डीनेण्ड शेविल : ए हिस्ट्री ऑफ योरोप (फ्राम रिर्फोमेशन टु द प्रजेण्टडे) पृ. 27

(6) किरण कुमार थपल्याल, डॉ. संकटा प्रसाद शुक्ला : सिन्धु सभ्यता, पृ. 171, 244–250

(7) द न्यू इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 10, 65वां संस्करण, पृ. 810

इस्लाम के उड़न बछेड़े पर सवार होकर अरबों ने लगभग सौ वर्षों के समय अन्तराल में सम्पूर्ण मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य एशिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। परिणाम स्वरूप एशिया और योरोप के मध्य व्यापार के तीनों पारम्परिक मार्ग अरबों के नियंत्रण में आ गये।

अरबों ने एशिया–योरोप व्यापार को पूरी तरह रोक दिया अथवा भारी चुंगी आदि के रूप में अवरोध उत्पन्न किया।(8) योरोप में मंहगाई आसमान छूने लगी। इन तीनों व्यापारिक मार्गों(9) को खोलने के उपायों पर विचार किया जाने लगा। अन्ततोगत्वा योरोपवासी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि व्यापार–मार्ग रणक्षेत्र के बीच से ही गुजरेगा। इसके लिये जनता की धार्मिक भावनायें भड़काई गयीं। क्रूसेड तथा जिहाद (धर्मयुद्ध) का लम्बा रक्तरंजित इतिहास रचा गया। इतने पर भी योरोपवासी एशिया–यूरोप व्यापारिक मार्गों को खोलने में सफल न हो सके।(10)

पुर्नजागरण के प्रेरक तत्व और नारी

1. तर्क तथा विवेक की स्थापना :

धर्म युद्धों के दौरान योरोप प्राचीन यूनानी दर्शन के सम्पर्क में आया।(11) ईसाई धर्म की जड़ता, मूढ़ता तथा अंध आस्था का स्थान सुकरात की तर्क प्रणाली, अरस्तू की वैज्ञानिक पद्धति तथा कार्य–कारण सम्बन्धों ने लेना शुरु किया। ज्ञान–विज्ञान अंगड़ाई लेने लगा। कोपर निकस के सौर मण्डलीय विचारों ने हलचल उत्पन्न कर दी।(12) पृथ्वी चपटी नहीं अपितु गोल है, पश्चिम की ओर चलते हुये पूर्व में पहुँचा जा सकता है। ऐसी

---

(8) नेहरू जवाहर लाल : विश्व इतिहास की झलक, पृ. 214,278

(9) उस समय एशिया तथा योरोप के मध्य व्यापार के तीन मार्ग थे।
1. रेशम मार्ग–चीन योरोप के मध्य 2. भारत से ईरान, तुर्की वाल्कन से योरोप तक एवं 3. द.पू. एशिया–द.प. भारत, अरब सागर, लाल सागर से भूमध्य सागर–रोम तक

(10) नेहरू जवाहर लाल : विश्व इतिहास की झलक, पृ. 281

(11) हेज, कार्लटन जे.एच. : माडर्न यूरोप टु 1870, पृ. 98

(12) ल्कार्क, लारेंस (योजना निदेशक) : सोलर सिस्टम, पृ. 9

धारणायें जोर पकड़ने लगीं। साहसिक समुद्री यात्रायें आयोजित की जाने लगी। अन्ततोगत्वा 1492 में कोलम्बस ने उत्तरी अमेरिका का अन्वेषण कर लिया।[13]

उत्माशा अन्तरीप का चक्कर लगाकर अरब सागर को पार कर 1498 में वास्कोडिगामा ने योरोप और भारत के मध्य एक नये समुद्री मार्ग को खोज निकाला। 1520 में मैग्लिन ने पृथ्वी की परिक्रमा कर प्रमाणित कर दिया है पृथ्वी गोल है।[14] 1642 तक आस्ट्रेलिया–न्यूजीलैण्ड का अन्वेषण कर लिया गया। 1856 में लिविगस्टन ने अफ्रीका के वन्य क्षेत्र से योरोप को परिचित करा दिया।[15]

2. वणिक वाद :

नये क्षेत्रों से लाभान्वित होते हुये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियां दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ने लगीं। यूरोप में नये वणिक वादी युग का सूत्रपात हुआ। 1500 से 1750 तक चला यह युग योरोपीय पुनर्जागरण का युग कहलाता है। इसी काल में गैलीलियो (1564–1642), कैपलर (1571–1630) और न्यूटन (1642–1727) जैसे वैज्ञानिक फ्रांसिस बेकन (1561–1626), थॉमस हॉब्स (1588–1679), देकार्त, रेने (1596–1650), स्पिनोजा (1632–1677), एवं जॉन लॉक (1632–1704) जैसे दार्शनिक हुये।

इसी काल में यूनान की उन्मुक्त तथा निर्बाध बौद्धिक परीक्षण की भावना को पुर्नजीवित किया गया।[16] साथ ही यह भी सत्य है कि विस्तृत व्यापारिक क्षेत्र तथा उपनिवेशवाद के चलते उपनिवेशों की जनता तथा संसाधनों का निर्मम शोषण तथा दोहन किया गया। अधिक उत्पादन की लालसा तथा भारी मात्रा में श्रम शक्ति की उपलब्धता की आकांक्षा ने नारी को संतान उत्पन्न करने वाली मशीन में बदल दिया।[17] नारी सामन्ती शोषण के आसमान से गिरकर वणिकवादी शोषण के खजूर में लटक गयी। उसे

---

(13) स्लोवैल गार्डन (सं.) : द बुक ऑफ नोलेज, वोल्यूम 2, पृ. 467
(14) हेज, कार्लटन जे. एच. : वही, पृ. 66, 70
(15) सक्सेना, डॉ. जयदयाल : दलितोद्धारक क्रान्ति की भ्रूण हत्या, भारत अश्वघोष, नव.–दिस. 1998, पृ. 35
(16) वी.पी. वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ. 2
(17) वैश्य एम.सी. : आर्थिक विचारों का इतिहास, पृ. 43

तो अपनी मुक्ति की लम्बी लड़ाई लड़नी थी।

3. औद्योगिक क्रान्ति :

नयी वैज्ञानिक चेतना के फलस्वरूप वैज्ञानिक आविष्कारों तथा विकसित प्राविधिकी की एक लम्बी श्रृंखला अस्तित्व में आई।(18) वणिकवादी औपनिवेशिक शोषण से व्यापारियों के पास अकूत धन के अम्बार लग गये। प्राविधिकी तथा धन के समन्वित प्रयोग ने भारी कल–कारखानों का लगाना सम्भव कर दिया। मानव, पशु तथा पवन ऊर्जा का स्थान वाष्प शक्ति ने ले लिया। पुराने योरोप के स्थान पर एक नया योरोप अस्तित्व में आया। बाजार आधारित व्यापक उत्पादन–वितरण व्यवस्था अस्तित्व में आयी। इसी को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है।

सस्ती श्रम शक्ति की उपलब्धता हेतु सामन्ती जकड़न को तोड़ा गया। व्यवस्था को अधिक उदारवादी बनाया गया। नारी को घरेलू श्रम से मुक्त कर औद्योगिक श्रमिक बनने के लिये प्रलोभित तथा प्रेरित किया गया। संगठित श्रमिक चेतना के साथ–साथ नारी मुक्ति की कामना भी बलवती हुयी।

सस्ता कच्चा माल प्राप्त करने तथा औद्योगिक उत्पादों को खपाने के लिये औद्योगिक देशों ने समस्त कबीलाई तथा सामन्ती दुनिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। यूरोपवासी अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि के विस्तृत क्षेत्रों में पहुँचे। पुरुषों के साथ नारियाँ भी इन क्षेत्रों में गयीं। उन्होंने यूरोप के संकीर्ण मैदानों, छोटी–छोटी नदियों, पहाड़ियों के स्थान पर प्रेरीज–सबाना के विस्तृत मैदान, दूर क्षितिज तक फैले सीमाहीन भूखण्डों पर पसरी हरीतिमा, रॉकीज, एण्डीज तथा ग्रेट डिवाडिंग रैंज की लम्बी–लम्बी पर्वत श्रृंखलायें, मिसौरी–मिसीसीपी, आमेजन, मरे–डार्लिग जैसी लम्बी–चौड़ी नदियाँ देखीं। उन्मुक्त और विस्तृत परिवेश ने उनके मानसिक क्षितिज को व्यापक बनाया, नारी

(18) कुछ प्रमुख अविष्कार निम्नलिखित हैं : सीडड्रिल–1701, फ्लाइंग शटल–1733, स्पिनिंग जैनी–1765, वाटर प्रेस–1769, पावरलूम–1785, छपाई की सिलैण्डर मशीन–1800, वाष्प इंजन–1765, रेल इंजन–1830, टेलीग्राफी–1850

अधिकार चेता बनी, उसे अपनी सृजन शक्ति के महत्व का भान हुआ। एक नई नारी का जन्म हुआ।

भारत में पूंजीवाद का प्रवेश

पूंजीवाद अपनी प्रकृति से कबीलाई तथा सामन्ती व्यवस्थाओं का विरोधी होता है। अपने विकासमान पथ पर आगे बढ़ने के लिये पूंजीवाद इन व्यवस्थाओं को नष्ट करता है। यूरोप में उसने यही किया। अमरीकी महाद्वीपों, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड में मूल जनजातियों का लगभग सफाया ही कर दिया गया। अफ्रीका के कबीलों के सदस्यों को बड़ी संख्या में दास बनाकर दूर–दूर स्थित क्षेत्रों में हमेशा के लिये स्थानान्तरित कर दिया गया। इन क्षेत्रों में यूरोपीय अप्रवासियों को बसाया गया और वहाँ पूंजीवादी व्यवस्था की नींव डाली गयी।

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार प्रारम्भ हुआ। उस समय भारत अपेक्षाकृत उन्नत सामन्ती व्यवस्था में था। अंग्रेजों के लिये यहाँ की विशाल जनसंख्या का उन्मूलन सम्भव न था और न दास बनाकर भेजा ही जा सकता था। यद्यपि प्रतिज्ञाबद्ध श्रमिकों के रूप में अवश्य कुछ किसान, मजदूर फिजी, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, गुयाना आदि देशों में भेजे गये। जनसंख्या की दृष्टि से यह सागर में से एक बाल्टी पानी निकालने से अधिक प्रभावी न हो सका। फिर भी 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों ने भारत के सामन्तवाद की जड़ में मट्ठा डालने का अवश्य प्रयास किया।

ठगों द्वारा धार्मिक आवरण में प्रचलित नर बलि प्रथा का अन्त किया, सतीप्रथा के रूप में विधवा नारी हत्या को प्रतिबन्धित किया, लार्ड मैकाले ने सामन्ती अंधविश्वासी शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर वैज्ञानिक तथा आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की नींव डाली। सामन्तवाद के सुदृढ़ दुर्ग देशी रजवाड़ों को डलहौजी की हड़प नीति (डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स) के अन्तर्गत एक–एक कर ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया गया, सारे देश में एक

समान फौजदारी कानून (इण्डियन पैनल कोड) लागू किया गया तथा न्यायालय स्थापित किये गये।

किन्तु अंग्रेजों की पूंजीवाद प्रभावित यह नीति अधिक समय तक न चल सकी। 1857 के महाविद्रोह ने स्थिति एकदम उलट दी। भारत के ब्रिटिश शासन ने शीघ्र ही समझ लिया कि भारत में पूंजीवादी विचारों तथा संस्थाओं का प्रसार ब्रिटिश हितों के विपरीत जा रहा है। उन्होंने अपनी पुरानी नीति बदलते हुये शिक्षा प्रसार की गति धीमी कर दी, समाज सुधारों की प्रक्रिया से हाथ खींच लिया। देशी रजवाड़ों को अभयदान दे दिया गया, भारत के औद्योगीकरण के मार्ग में हर सम्भव रोड़े अटकाये गये। यहाँ के मरणासन्न सामन्तवाद को जीवित बनाये रखा गया और ब्रिटिश हितों की रक्षा हेतु उन्हें कनिष्ठ सहयोगी बना दिया गया।[(19)]

इतने पर भी इतिहास के अदृश्य हाथों से प्रेरित पूंजीवाद ने भारत में अपने पैर फैलाने जारी ही रक्खे। साम्राज्य के स्थायित्व के लिये देश में रेल–तार का जाल बिछाना, उनके रख–रखाव के लिये कर्मशालाओं का निर्माण करना, प्रशासन तंत्र को संचालित करने के लिये सीमित मात्रा में अंगेजी पढ़ा–लिखा मध्य वर्गीय शिक्षित वर्ग तैयार करना, छापाखाना खोलना तथा अपने समाचार पत्र निकालना, कबीलाई–सामन्ती उपभोक्ता आदतों को बदलना, ब्रिटिश माल के विक्रय तथा देशी माल के क्रय हेतु एक बिचौलिया व्यापारी वर्ग विकसित करना, उनकी अनिवार्यतायें थीं। इन सब ने अपना प्रभाव डाला।

भारत में नव जागरण और नारी पर प्रभाव

जन गण में नव जागरण की हिलोरें उठने लगीं। पूंजीवादी लोकतंत्री, काल्पनिक समाजवादी तथा राष्ट्रवादी विचार शिक्षित जनमानस का मंथन करने लगे। स्वतंत्रता तथा समानता पर आधारित राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता

(19) अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम पृ. 29

अनुभव की जाने लगी और साथ ही शासन में भागीदारी की मांग उठाई जाने लगी। इसी के साथ–साथ यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति ने भारतीय ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था और कूपमण्डूकता के इस्पाती खोल को ध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया। ग्रामीण गृह उद्योग और हस्तशिल्प एक–एक कर नष्ट होने लगे। इन ग्रामीण उद्योगों में महिलाओं की भी बराबरी की साझेदारी होती थी। पुरुषों के साथ–साथ नारियाँ भी बेकारी की शिकार बनी। खेती–किसानी पर उनकी निर्भरता बढ़ी[20] और कुछ नारियां उद्योगों में मजदूरी करने को भी विवश हुयीं।[21] गाँव के सीमित दायरे से नारी बाहर निकली, उसने परिवर्तन शील नगरी जीवन को देखा और उससे प्रभावित भी होने लगी।

कुछ उच्च वर्गीय शिक्षित नारियाँ राजनीति के क्षेत्र में भी सक्रिय होने लगी। नारी चेतना का अनुमान इस तथ्य से भली भांति लगाया जा सकता है कि कांग्रेस के चौथे इलाहाबाद अधिवेशन में कांग्रेस के कोष के लिये उन्होंने अपनी घड़ियां तथा आभूषण तक दे दिये थे।[22] मैडम कामा ने पेरिस में 1902 से 1907 तक भारतीय सशस्त्र क्रान्ति के प्रयासों में महत्वपूर्ण योग दिया था। उन्होंने पेरिस में भारतीय, ईरानी, चीनी क्रान्तिकारियों के साथ योजना बनाने के साथ–साथ गोष्ठियाँ भी आयोजित की थीं। वे अमेरिका में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रेरणा स्रोत थीं।[23] एक आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेण्ट भारत की ही होकर रह गयीं। उन्होंने राष्ट्रीय तथा होमरूल आन्दोलन को अनुप्राणित किया। भारत की राजनीति में उन्होंने 1914 में प्रथम युद्ध के प्रारम्भ होने के ठीक पहले प्रवेश किया था। 1917 में उन्होंने महिला परिषद का गठन किया। इसी वर्ष वे कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष चुनी गयीं। उन्होंने 1921 में राष्ट्रीय स्त्री सभा नामक संस्था का गठन बम्बई में किया।[24]

---

(20) जोन ब्रूशैप : ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म इन इण्डिया, पृ. 27–28
(21) डेनियल हाउस्टन बुकानन : द डेवलपमेण्ट ऑफ कैपिटलिस्ट इण्टरप्राइज इन इण्डिया, पृ. 40
(22) अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम पृ. 150
(23) सोवियत लैण्ड, फरवरी 1976
(24) जागरण, कानपुर 27 अगस्त 1997

प्रथम विश्व युद्ध और महिला जागरण

प्रथम विश्व युद्ध 1914 में प्रारम्भ हुआ और चार वर्ष 1918 तक चला। अपरिमित जन–धन की हानि हुयी। युद्ध का कुल प्रत्यक्ष व्यय 186 अरब डॉलर था।[25] इसके दुष्परिणामों को यूरोप के साथ–साथ साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेशों की जनता को भी भुगतना पड़ा। भारतीय, वियतनामी, अफ्रीकी युवकों को झूठे प्रलोभनों से या जबरदस्ती से भर्ती कर मोर्चों पर भेजा गया। युद्ध के अनुत्पादक व्यय ने पूंजीवादी व्यवस्था के संकट की उद्घोषणा कर दी। मँहगाई तथा आवश्यक बस्तुओं के अभाव ने सामान्य जनता के कष्टों में कल्पनातीत वृद्धि की। पुरुषों की तुलना में महिलाओं को युद्ध की विभीषिका अधिक झेलनी पड़ी। जन गण में जागृति के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ने लगे। नारियाँ भी इससे अछूती न रह सकी। राष्ट्रीय मुक्ति संग्रामों में उभार आया। फिलीपींस में स्वतन्त्रता की मांग उठी, फ्रेंच इण्डोचीन में कुछ स्थानों पर सशस्त्र विद्रोह भी हुये, दहोमे आइवरी कोस्ट में संगठित प्रतिरोध किया गया, न्यासालैण्ड में अंग्रेज बाग मालिकों के विरुद्ध असन्तोष सुलग उठा, दक्षिण अफ्रीका में मजदूरों ने हड़तालें कीं। भारत में भी होमरूल आन्दोलन, कांग्रेस लीग एकता, खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन का ज्वार उठा।[26] जिसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। सोवियत समाजवादी क्रान्ति ने सम्पूर्ण संसार को झकझोर दिया। श्रमजीवी पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी सोवियत क्रान्ति की ओर आशा भरी दृष्टि से देखा।

नारियों में राजनीतिक जागरण के प्रमाण दिखायी देने लगे। 1920 में संयुक्त राज्य अमरीका, 1928 में ब्रिटेन और 1936 में सोवियत संघ की महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त कर लिया।

फासीवाद और नारी

प्रथम महायुद्धजनित जनगण में जागरुकता और नारी मुक्ति अभियान के

---

(25) वाल्टर क्रांसथेली लैंग सैम : दि वर्ल्ड सिन्स 1914 पृ. 77

(26) अयोध्या सिंह : वही, पृ. 362–3

बढ़ते चरण निहित स्वार्थों के कानों में खतरे की घंटी जैसे गूंजने लगे। सोवियत संघ की समाजवादी उपलब्धियों के कुछ सच और कुछ अतिरंजित समाचार उत्पीड़ित जन गणों को आन्दोलित तथा उत्तेजित करने लगे। समाजवाद तथा आर्थिक लोकतंत्र के पक्ष में समर्थन बढ़ने लगा। पूंजीवादी साम्राज्यवादी शासन सतर्क होने लगे। जिन देशों के पास व्यापक उपनिवेश थे उन्होंने उपनिवेशों की जनता के सामने थोड़े बहुत, आधे अधूरे सुधार परोस कर उनके असंतोष के शमन का प्रयास किया।(27) किन्तु उपनिवेशों के शोषण में कोई भी ढील नहीं आने दी। औपनिवेशिक लूट के सहारे वे अपने देश के जन गण का जीवन स्तर ऊंचा बनाये रखने में सफल रहे तथा उनके यहाँ पूंजीवादी लोकतंत्री संस्थायें सुरक्षित बनी रहीं। किन्तु जिन औद्योगिक राष्ट्रों के पास थोड़े उपनिवेश थे या बिल्कुल नहीं थे वहाँ की जनता में विद्रोह बढ़ता रहा। निहित स्वार्थों को लगने लगा कि अब वे लोकतंत्री साधनों के माध्यम से सत्ता पर अधिक दिन तक अधिकार जमाये रखने में सफल नहीं हो सकेंगे। ऐसी स्थिति में निहित स्वार्थियों ने लोकतंत्र का लबादा उतार फेंका और अपने–अपने जनगण पर नग्न फांसीवादी तानाशाही थोप दी।

सबसे पहले इटली में 1922 में मुसोलनी के अधिनायकत्व में फासिस्ट तानाशाही थोपी गयी। जापान में सैन्यवादी कुलीन तंत्र और सुदृढ़ कर दिया गया। 1933 में जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजीवादी पार्टी निरंकुशतंत्र सत्ता हथियाने में सफल रही। 1937–38 तक जर्मनी और इटली की सहायता से स्पेन में लोकतंत्र की हत्या कर दी गयी और जनरल फ्रेको के सैन्यतंत्र ने सरकार पर अधिकार कर लिया। जन गण और महिलाओं ने लम्बे संघर्ष के बाद जो अधिकार प्राप्त किये थे उन्हें पैरों तले रौंद दिया गया।

दो महायुद्धों के समय अन्तराल का घटना चक्र तथा नारी

इतने पर भी जनजागरण और महिला मुक्ति के कारवां की गति अवरुद्ध न

(27) भारत के लिये भारत शासन अधिनियम 1919 ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया।

की जा सकी। सोवियत क्रान्ति का प्रभाव तो पड़ ही रहा था। 1925–27 की चीनी क्रान्ति ने उपनिवेशों में मुक्ति की नयी लहर उत्पन्न कर दी। 1927 में ब्रूसेल्स में दलित राष्ट्रीयताओं की कांग्रेस हुयी जिसने स्वाधीनता के लिये साम्राज्यवाद विरोधी लीग की स्थापना की। यहीं जवाहर लाल नेहरु, सुंगचिंग लिंग, अल्बर्ट आइन्स्टीन, रोम्या रोला तथा कुछ कम्युनिस्ट नेता परस्पर मिले और जन गण की मुक्ति पर विमर्श किया।[28]

1929–33 के समय अन्तराल में पूंजीवादी विश्व को भयानक आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ा। उत्पादन 25 से 50 प्रतिशत तक गिर गया। एक के बाद एक उद्योग बन्द होने लगे, भारी मात्रा में मजदूरों की छटनी की गयी।[29] श्रमिकों, किसानों और विशेष रूप से नारी श्रमिकों तथा निम्न मध्य वर्गीय गृहणियों को भीषण कष्टों का सामना करना पड़ा। पीड़ित जनता की सहायता करने के स्थान पर उद्योगपतियों ने मंदी से बचने के लिये उत्पादों तथा खाद्यान्नों को नष्ट कर दिया।[30] साम्राज्यवादी देशों ने इस आर्थिक संकट का बोझ अपने उपनिवेशों पर डाल दिया। उनके कृषि उत्पादों के मूल्य लगभग आधे रह गये।[31]

द्वितीय महायुद्ध और नारी

आर्थिक मंदी ने पूंजीवादी–औद्योगिक देशों के अन्तर्विरोधों को तीव्र कर दिया। इसी समय सोवियत संघ का राष्ट्रीय उत्पाद दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ रहा था, जो साम्राज्यवादियों–फासीवादियों के लिये ईर्ष्या का विषय बन गया। संसार द्वितीय महायुद्ध की ओर अग्रसर होने लगा। आखिरकार सितम्बर 1939 में युद्ध का ज्वालामुखी फट पड़ा। युद्ध की आग लगभग छः वर्ष तक धधकती रही, जिसमें समस्त संसार के अगणित नर–नारी और बाल–वृद्ध झुलस गये। महायुद्ध के दौरान सबसे

---

(28) जी. अधिकारी : डाकूमेण्ट ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया, भाग 1, पृ. 184
(29) जॉन ईटन : पॉलिटिकल इकनोमी, पृ. 200
(30) रजनी पामदत्तः फासिज्म एण्ड सोशल रिवोल्यूशन, पृ. 58
(31) के. आर. कुलकर्णी : एग्रीकल्चरल मार्केटिंग इन इण्डिया, पृ. 53 बम्बई 1951

अधिक दमन, अत्याचार और उत्पीड़न का सामना नारियों को करना पड़ा।

उन्होंने अपने पिता, भाइयों, पति तथा पुत्रों को रण क्षेत्र में वीरगति पाते भरे हृदय से देखा। स्वयं बिन ब्याही माँ बनने का अभिशाप झेला तथा बलात्कारियों के हाथों अपनी अस्मिता को लुटते देखा। इन विषम परिस्थितियों में भी नारी हतोत्साहित नहीं हुयी। उसने युद्ध की द्वितीय रक्षा पंक्ति को सम्हाला। इतना ही नहीं निर्णायक क्षणों में वह रण क्षेत्र में भी उतरी। स्टालिनग्राद तथा बर्लिन के निर्णायक युद्धों में उसने तोपें दागीं, टैंक चलाये, संचार साधनों का संचालन किया, शत्रु की गतिविधियों की सूचनायें एकत्र की एवं घायलों की चिकित्सा और सेवा–सुश्रुषा की। ''लेडी विद द लैम्प'' के चरित्र को पुनर्जीवित करते हुये उसने आत्मोत्सर्ग के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये।

युद्ध समाप्त होते–होते दुनिया वैसी न रह गयी थी जैसी 1939 के पहले थी। अगस्त 1941 के अटलांटिक चार्टर ने उपनिवेशों में स्वतंत्रता की लौ को और प्रज्ज्वलित कर दिया। सोवियत जनता के अनुपम अनुशासन, अद्‌भुत त्याग, बलिदान और लाल सेना के शौर्य–रणकौशल ने समाजवादी व्यवस्था को विश्व रंगमंच पर एक प्रतिष्ठित स्थान दिला दिया। इण्डोचीन, इण्डोनेशिया, वर्मा, मलाया, फिलीपींस तथा भारत में स्वतंत्रता की उत्तल तरंग हिलोरें लेने लगी। आजाद हिन्द सेना की झाँसी रानी महिला रेजीमेण्ट ने भारतीय नारियों में राजनीतिक चेतना की वृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया। महायुद्ध की धधकती यज्ञवेदी से एक नयी नारी प्रकट हुयी।

युद्धोत्तर कालीन परिवेश और नारी

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति ने एक ओर शीत युद्ध का फाटक खोल दिया और दूसरी ओर उपनिवेशों की स्वतंत्रता का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। महायुद्ध से सोवियत संघ एक महाशक्ति बन कर उभरा और अमेरिका यूरोप को पीछे धकेल कर विश्व राजनीति का केन्द्र बन गया। संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) अमरीकी कठपुतली बनने को अभिशप्त हुआ। 1949 में चीन में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना हुयी। इस

परिघटना ने समाजवादी शिविर को अधिक व्यापक रूप प्रदान किया। उपनिवेशों भारत–पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, फिलीपींस, मध्य पूर्व और अफ्रीकी देशों की स्वतन्त्रता ने गुट निरपेक्ष राष्ट्रों का एक महत्वपूर्ण समूह निर्मित कर दिया जिसने महाशक्तियों के बीच सन्तुलनकारी भूमिका अदा करने का प्रयास किया। अपने इस प्रयास में यह समूह कितना सफल रहा, यह विवाद का विषय हो सकता है परन्तु इतना तो अनुभव किया ही गया कि निर्गुट आन्दोलन की धमक संयुक्त राष्ट्रों की वीथिकाओं में भी सुनी जाने लगी।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम को नारी दूर खड़े होकर तटस्थ भाव से नहीं देखती रही, उसने इन सभी अभियानों में पुरुष के कंधे से कंधा मिला कर भाग लिया। स्वभावतः सत्ता में भागीदारी की ललक भी उसमें जागी। इसके परिणाम भी सामने आने लगे। 1945 में फ्रांस, 1947 में जापान तथा 1950 में भारत की महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त कर लिया। जैसे–जैसे अन्य उपनिवेश स्वतन्त्र होते गये वैसे–वैसे वहां की महिलाओं को भी मताधिकार प्राप्त होता गया।

शीत युद्ध के चलते नाभकीय आयुधों से भयभीत महाशक्तियां आपस में सीधे–सीधे टकराने से बचतीं रहीं। चाहे कोरिया का रण क्षेत्र हो, कांगो का गृह युद्ध हो, वियतनाम का लम्बा मुक्ति संघर्ष हो, अरब–इजराइल जातीय संग्राम हो, हंगरी में सोवियत हस्तक्षेप हो, स्वेज नहर पर अरब–इजराइल शक्ति परीक्षण हो, क्यूबा की नाकाबन्दी हो अथवा अफगानिस्तान में सोवियत उपस्थिति हो, सर्वत्र महाशक्तियां दूर से ही युद्धाग्नि में आहुति डालती रहीं लेकिन इन सीमित युद्धों के दुष्परिणाम सम्बन्धित क्षेत्र के जनगण को ही भुगतने पड़े। महिलाओं को ही सबसे अधिक कष्ट झेलने पड़े। उनके दुःखद चीत्कार की प्रतिध्वनि संयुक्त राष्ट्रों के विभिन्न मंचों पर भी सुनायी दी किन्तु महाशक्तियों के सहयोग के अभाव में वह नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गयी। इस सन्दर्भ में नारी शक्ति की दुर्बलता स्पष्ट रूप से देखी गयी।

नव स्वतन्त्र देशों का नेतृत्व वर्ग समाजवाद और पूंजीवाद के बीच दुविधाग्रस्त होकर पेण्डुलम की तरह कभी इधर कभी उधर हिचकोले खाता रहा। वह जनता को न तो समाजवाद ही दे सका और न पूंजीवाद। भ्रष्टाचार, जातीय–साम्प्रदायिक संघर्ष,

धन–बाहुबल, बेकारी, सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण, निर्धनता, अशिक्षा, अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि आदि के रोगाणु इन देशों को भीतर ही भीतर खोखला कर रहे हैं। इनकी जनता को ''न माया मिली न राम'', इस स्थिति का सर्वाधिक कुप्रभाव नारी पर पड़ रहा है।

उत्तर आधुनिक या उत्तर औद्योगिक समाज तथा नारी

दूसरे महायुद्ध के अन्तिम दिनों में मानव जाति के हाथ में नाभिकीय ऊर्जा के रूप में ऊर्जा का एक अनन्त भण्डार आ गया था। इसके शान्तिपूर्ण दोहन के प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं तथा सफलतायें भी मिल रही हैं। यदा–कदा चेर्नोविल जैसी दुर्घटनायें इस मार्ग में आने वाले खतरों की ओर भी इंगित करती रही हैं। युद्ध समाप्ति के बाद एक दशक बीतते–बीतते 1957 में मानव ने बाह्य आकाश की लक्ष्मण रेखा को भी लांघ लिया। कुछ दिन बाद चन्द्रमा की धरती को भी अपने पैरों से नाप डाला। स्वचालन, इलैक्ट्रोनिकी, इण्टरनेट और साइबर युग का सूत्रपात हुआ। दुनिया सिकुड़कर एक गाँव बन गयी।

इन वैज्ञानिक आविष्कारों–प्रौद्योगिकी ने विश्व के भौतिक परिदृश्य को ही नहीं बदला मानसिक जगत को भी आन्दोलित किया। जे.एफ. ल्योटार्ड के अनुसार उत्तर आधुनिकवाद वैदेशिक विविधता के प्रति हमारी संवेदन शीलता को परिष्कृत करता है और दूसरे समाजों की विवेकहीनता के प्रति सहन शीलता में वृद्धि करता है।[32] यह संस्कृति संकट का निदान हैं इसी के चलते प्रचलित सर्वमान्य मान्यतायें, नैतिक मानदण्ड, जीवन के आदर्श धार्मिक विश्वास सभी कुछ उत्तर औद्योगिक युग की अदृश्य शिला से टकरा कर ध्वस्त या क्षतिग्रस्त हो रहे हैं। हर प्रकार के बन्धनों, सीमाओं, परम्पराओं का उल्लंघन किया जा रहा है। नव युग की नयी हवा से नारी भी प्रभावित हो रही है। नारी–पुरुष समानता, ऐच्छिक गर्भधारण तथा गर्भपात का अधिकार आदि के उद्घोषों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ रही है। मादक द्रव्यों के सेवन, भक्ति मार्गी वामाचार जैसी कालातीत प्रथाओं

(32) हाल फोस्टर (स.) पोस्ट माडर्न कल्चर, पृ. 57

की ओर नयी पीढ़ी पैर पसार रही है। परम्परावादी सोच से चिपके लोगों के लिये यह सब असहनीय तथा आग्राह्य हो रहा हैं इस को पूंजीवाद–उपभोक्तावाद का विकृत सड़ा तथा घृणास्पद रूप कहा जा रहा हैं कुछ के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था के समाजवाद की ओर बढ़ते स्वाभाविक चरणों को रोकने, पथभ्रष्ट करने तथा पृष्ठगामी विचलित करने के उद्‌देश्य से प्रतिक्रियावादियों के सोचे–समझे हथकण्डे हैं।

इस प्रकार के विचारों से तथाकथित पूंजीवादी सड़ांध को मिटाने अथवा समाजवाद के स्वाभाविक विकास को रोकने में कितनी सफलता मिल रही है, यह एक अलग विषय है किन्तु नारी अधिकारों तथा प्रगति के विरोधियों को एक मंच अवश्य मिल गया है। वे धार्मिक ग्रन्थों का सहारा लेकर, उनसे उद्धरण चुन कर नारी विरोध की आग को हवा देते रहते हैं। हिन्दुओं की सर्वमान्य धार्मिक पुस्तक गीता से उद्धरण देकर नारी जाति को पापयोनि बताया जाता है।(33) पाप योनि के प्राणी के कैसे अधिकार, उनकी कैसी सामाजिक भागीदारी ! शिव पुराण के अनुसार नारी नीच प्राणी, मन्द बुद्धि तथा हर समस्या की जड़ है।(34) लड़कियों को बचपन से ही सिखाया जाता हैं कि जोर से हँसना, तेज दौड़ना, प्रश्न पूंछना स्त्रीयोचित नहीं है।(35) रामचरित मानस का नारी विरोध तो सर्वविदित है ही।(36) धर्म के नाम पर ही स्त्रियों को देवदासी प्रथा गुलामी की जंजीरों में बाधती हैं, उन्हें वेश्यावृत्ति के व्यापार में धकेलती है।(37) इन पृष्ठगामी और पार्श्वगामी प्रवृत्तियों के साथ–साथ आधुनिक युग नारी मुक्ति की प्राणदायिनी वायु से भी उत्प्राणित हो रहा है।

प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक नारी जीवन का कारवाँ निरन्तर

---

(33) गीता. 9.32
(34) राज किशोर : स्त्री के लिये जगह, पृ. 66
(35) राज किशोर : स्त्री के लिये जगह, पृ. 10
(36) नारी स्वभाव सत्य कवि कहईं, अवगुण आठ सदा उर बसईं।
महावृष्टि जल फूट क्यारी, जिमि स्वतंत्र हुयी बिगरहि नारी।
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।
भ्राता, पिता, पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
सकै न रोक काम कर वेगा........................... इत्यादि।
(37) राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 9 मई 2001, पृ. 6

चलता, सरकता, लड़खड़ाता, घसिटता तथा कुछ देर रुककर पुनः चलता हुआ निरन्तर आगे बढ़ रहा है। आज की नारी भूतकाल से प्रेरणा–शिक्षा लेती हुई, मार्ग के रोड़ों को हटाती और वर्तमान को सँवारती भविष्य को गौरवशाली बनाने को कृतसंकल्प है। आशा है कि संस्कृत महाकाव्यों में नारी की राजनीतिक भूमिका का अध्ययन भूत को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने को प्रेरित करेगा, उसे गले का पत्थर नहीं बनने देगा, साथ ही भविष्य के लिये प्रकाश स्तम्भ का भी कार्य करेगा और अति उत्साह के जोश में भटकने से भी रोकेगा।

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

आधुनिक संदर्भ में महाकाव्य युगीन नारी की भूमिका का महत्व

प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों – रामायण तथा महाभारत में वर्णित नारी की जो भी राजनीतिक भूमिका रही हो, आज के नाभिकीय ऊर्जा तथा विश्वव्यापी इलैक्ट्रॉनिक संचार संजाल से स्पन्दित आधुनिक उत्तर औद्योगिक तथा उत्तर आधुनिक काल में उसका क्या महत्व रह गया है ? सहस्त्रों वर्ष पुराना महाकाव्यों का युग बदल गया, भौतिक स्थितियाँ, आधारभूत संरचनायें तथा उन पर टिकी अधिसंरचनायें, नैतिक आदर्श, धार्मिक मान्यतायें, सांस्कृतिक मापदण्ड, आर्थिक सम्बन्ध, राजनीतिक संस्थायें सभी कुछ परिवर्तन के प्रवाह में लुड़कती हुई रूपान्तरित होती रही हैं। आज न वह नारी रह गयी है न वह राजनीतिक परिवेश ! प्राचीन परिवेश में पली–बढ़ी नारी के क्रियाकलाप किस रूप में आधुनिक नारी को उत्प्रेरक ऊर्जा देने में समर्थ हो सकते हैं ? आधुनिक वैचारिक अन्तरिक्ष में यह प्रश्न रह–रह कर कौंधता रहता है।

प्राचीनता के प्रति मोह तथा उसे महिमा मण्डित करना एक विश्वव्यापी सामान्य परिघटना है किन्तु भारतीयों को इस क्षेत्र में विशेष कुशलता प्राप्त है। हमारे यहाँ 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' रहा है। वेद–उपनिषद, महाकाव्य–पुराण हमारे प्रेरणा स्रोत रहे हैं, भले ही उनके बारे में हम कुछ न जानते हों या जो जानते हों वह भी भ्रमात्मक तथा आंशिक ही हो। आज भी अधिसंख्य भारतीयों के लिये राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, कृष्ण पूर्ण पुरुष योगिराज हैं। रामायण तथा महाभारत टी.वी. धारावाहिकों की लोकप्रियता इसके प्रमाण हैं, अन्य अंधविश्वासों से भरे अवैज्ञानिक धार्मिक धारावाहिकों में विज्ञापनों की

भरमार तथा दर्शकों की उमड़ती भीड़ से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इनकी भूमिका कितनी प्रभावी होती है। जनता अपने कार्यों के औचित्य तथा अनौचित्य का आधार महाकाव्यों के नायकों–खलनायकों के करणीय तथा अकरणीय आचरण को ही बनाती है। आधुनिक नारी के आचरणों को भी अच्छा या बुरा महाकाव्यों तथा पुराणों के सन्दर्भ में ही देखा समझा जाता है। अनुसुइया के द्वारा सीता को दिये गये पतिव्रत सम्बन्धी उपदेश [1] आज भी भारतीय नारी के लिये आदर्श बताये जाते हैं, सती प्रथा को सुलोचना तथा माद्री के सती होने के उपाख्यानों[2] के आधार पर महिमामण्डित किया जाता है। यद्यपि बाल्मीकि रामायण में सुलोचना सती का कोई उल्लेख नहीं है।

पुर्नजागरण काल के प्रसिद्ध समाज सुधारकों ने भी आधुनिक युग की शंखध्वनि उपनिषद–वेदों आदि को आधार बनाकर ही की थी। ब्रह्म समाज ने उपनिषदों को अपने एकेश्वरवाद का आधार बनाया था।[3] आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रेरणास्रोत वेद थे। वे वेदों को समस्त विद्या तथा ज्ञान का मूल मानते थे।[4] विदेशी मूल की श्रीमती एनी बेसेण्ट के लिये भी प्राचीन हिन्दू दर्शन (गीता–उपनिषद)[5] प्रेरणा स्रोत था। लोकमान्य पं. बालगंगाधर तिलक के लिये राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की भूमिका में गीता एक दृढ़ प्रकाश स्तम्भ के सदृश सहायक थी।[6] स्वामी विवेकानन्द ने भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा दरिद्र नारायण के अभ्युत्थान के अभियान को बल प्रदान करने के लिये वेदान्त दर्शन का उद्‌घोष किया था।[7] स्पष्ट है कि विशाल–संस्कृत साहित्य,

---

(1) रामा. 2.117.23–29, रामा. 2.118.2–12

(2) महा. आदि. 124.31

(3) वी.पी. वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, तृतीय संस्करण 1982–83, पृ. 15

(4) सरस्वती दयानन्द : भूमिका, ऋग्वेद

(5) एनीबेसेन्ट : हिन्टस् ऑन दि स्टडीज ऑफ द भगवतगीता एवं द विज़डम ऑफ द उपनिषदस, 1907

(6) तिलक : गीता रहस्य, अनु. सुकथान्कर अंग्रेजी में

(7) कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, 8 जिल्दें

प्रेरणादायक तथा आदर्शों का अक्षय भण्डार है। इसी से हमें विशेष सावधान रहने की भी आवश्यकता है कि कहीं संस्कृत साहित्य का अन्धमोह हमें सड़ी–गली रूढ़ियों, कालातीत परम्पराओं, जड़ अन्धविश्वासों के मकड़जाल में न उलझा दे। विशेषकर तब जब महिलाओं के दमन के लिये हमेशा धर्म तथा संस्कृति के नाम पर अनुमोदन जुटाया जाता है।[8] संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते समय शोधार्थी ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट, वैज्ञानिक, विवेक–तर्क सम्मत एवं पूर्वाग्रह मुक्त रखने का भरसक प्रयत्न किया है।

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य की तुलना में महाकाव्यों को वरीयता

इसी सन्दर्भ में एक अन्य प्रश्न रेखांकित होता है – जब सम्पूर्ण संस्कृत महत्वपूर्ण तथा प्रेरणादायक है तो मात्र साहित्य महाकाव्यों को ही नारी की राजनीतिक भूमिका का आधार क्यों बनाया गया ? क्या समग्रता में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के आधार पर नारी की राजनीतिक भूमिका अधिक उपयोगी तथा सारगर्भित न होती ? बाह्यतः यह सुझाव आकर्षक प्रतीत होता है, मन को प्रलोभित भी करता है किन्तु व्यवहारतः दुष्कर है क्योंकि संस्कृत साहित्य इतना विशाल है कि समग्रता में इसका विशिष्ट अध्ययन किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं हो सकता।

वैदिक साहित्य के अध्ययन में कठिनाइयाँ

अकेले वैदिक साहित्य का ही विस्तार इतना है कि उसके अनुशीलन के लिये एक पूरा जीवन चाहिये।[9] इतना ही नहीं वैदिक साहित्य के अनुशीलन में अन्य कई बाधायें भी हैं। वेदों में एक–एक शब्द न जाने कितने भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

(8) लोक लहर, 9 जुलाई 2000 पृ. 5
(9) देवराज : भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में) भूमिका पृ. 36

कुछेक शब्दों के तो डेढ़ सौ तक भिन्न–भिन्न अर्थ हैं।[10] किस मंत्र में किस शब्द का कौन सा अर्थ लागू होता है इस पर विद्वान एक मत नहीं हैं। वेदों पर उपलब्ध यास्क, सायण, दयानन्द आदि के भाष्यों में पर्याप्त मतान्तर है। अतएव वेदों के आधार पर नारी की राजनीतिक भूमिका पर कोई सर्वमान्य या स्वीकृत निष्कर्ष निकालना दुष्कर ही है, इतना ही नहीं वेदों पर आधारित नारी की राजनीतिक भूमिका का अध्ययन मनमानेपन और पूर्वाग्रहों की आखेटस्थली बनने का भी अवसर प्रदान करने वाला हो सकता है।

वेदों के रचना काल तथा उसके बाद के लम्बे समय अन्तराल में आर्थिक–सामाजिक भौतिक परिस्थितियों में निरन्तर बदलाव आता रहा। नये परिवर्तित वातावरण में प्राचीन वेद मंत्रों का अर्थ तथा भाव समझ से बाहर होता गया, इसे लेकर मतभेद, विवाद उत्पन्न होने लगे। इस समस्या के निराकरण के लिये वेदों से सम्बन्धित नये ब्राम्हण, आरण्यक, उपनिषद ग्रन्थों की रचना की गयी। इन्हें गौरवान्वित तथा मान्य करने के उद्देश्य से इन्हें भी वैदिक साहित्य का अंश घोषित कर दिया गया। इतना ही नहीं, वेद मंत्रों को स्पष्ट तथा हृदयगम करने के उद्देश्य से वेदों पर यास्क पूर्व लगभग 22 टीकायें लिखीं गयीं [11]यद्यपि इस समय उस युग की लिखित यास्क की ही एक मात्र टीका उपलब्ध है।

शायद यास्क के बाद कुछ और टीकायें लिखी भी गयीं या न भी लिखी गयीं हों। बदली परिस्थितियों के काल में लिखी गयीं इन टीकाओं तथा ग्रन्थों में वेदों का मूल भाव या भावना कितनी सुरक्षित बची रह गयी, कहा नहीं जा सकता। विवाद तथा विरोध मतमतान्तरों के लिये गुंजाइश बनी ही रहती है। इतने विशाल साहित्य का व्यापक, लगभग सर्वमान्य, तर्कसंगत अध्ययन एवं व्याख्या एक व्यक्ति के लिये यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। इस कार्य के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन सम्पन्न बड़ी संस्था के

(10) देखिये निघण्टु
(11) निघण्टु तथा निरुक्त (सं. लक्ष्मण स्वरूप) पृ. 713

सामूहिक प्रयास अपेक्षित हैं।

इतना ही नहीं, आज के वैज्ञानिक युग में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो वेदों को ईश्वरकृत अपौरुषेय, अनादि, शाश्वत सर्वकालीन मानते हैं।[12] ऐसे लोगों के अनुसार वेदों में इतिहास या प्राचीन काल के लोगों के आचार–विचार, जीवन प्रणाली आदि के बारे में खोजना व्यर्थ है, वे तो शाश्वत, मानव इतिहास निरपेक्ष कालातीत, अक्षय ज्ञान निधान हैं।[13] वेदों पर किसी भी प्रकार की टिप्पणी इनकी आस्था को आहत करने के लिये पर्याप्त है। अब तो आस्था की भावना हर प्रकार के ज्ञान–विज्ञान, शोध से ऊपर है। धार्मिक अंधविश्वासों पर टीका या चोट करना, खुले रूप में प्रदर्शन, दंगों तथा हिंसा को आमन्त्रण देना है।

महाकाव्यों के अध्ययन से लाभ

इन्हीं तत्वों को ध्यान में रखते हुये वैदिक साहित्य में नारी की राजनीतिक भूमिका पर कार्य करने का कंटकाकीर्ण दुर्गम मार्ग अपनाने का साहस न जुटाया जा सका। संस्कृत के महाकाव्यों–रामायण और महाभारत पर कार्य करने में वेदों की तुलना में एक अन्य लाभ भी दृष्टिगोचर हुआ। वेदों में आखेट–पाषाण युग से लेकर जनपदीय राज्यों तक का ही विवरण उपलब्ध है, वह भी स्फुट रूप में, कदम–कदम पर रिक्तता का अनुभव होता है, इसके विपरीत महाकाव्यों की विषय वस्तु प्रबन्धात्मक है, लम्बे समय अन्तराल में बदलते हुये जीवन के प्रत्येक पक्ष को किसी न किसी रूप में छुआ गया है।

इन सभी कालों में नारी की भूमिका पर भी कुछ न कुछ विवरण मिल जाता है। इन महाकाव्यों के माध्यम से नारी की राजनीतिक भूमिका पर समग्रता में प्रकाश

(12) अमर उजाला कानपुर 14 जून 2000, पृ. 6   कल्याण, वेद कथांक, पृ. 14,40, 144 147
(13) वासुदेव शरण अग्रवाल : भारत–सावित्री, भाग 3 पृ. 228

पड़ता है। सच ही कहा गया है ये महाकाव्य विशेषकर महाभारत प्राचीन भारत के विश्वकोष हैं।[14] महाभारत तो एक ओर वैदिक काल तक पहुँचता है, दूसरी ओर बौद्ध, जैन तथा इण्डोग्रीक राज्यों के इतिहास से आ मिलता है।[15] इतना ही नहीं कुछ अंश तो गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद तक से सम्बन्धित हैं। माद्री का सती होना एक ऐसा ही प्रकरण है। स्मरणीय है कि सती होने का पहला पुरातात्विक साक्ष्य एरण स्तम्भ लेख (510–11 ई.) में मिलता है जिसके अनुसार सामन्त गोपराज की पत्नी अपने पति के शव के साथ चिता में जल गयी थी।[16] सती प्रथा इस घटना के कुछ पूर्व या इसी काल में प्रारम्भ हुयी होगी क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी विधवा भाभी ध्रुवस्वामिनी से विधिवत् विवाह कर उसे अपनी पट्ट राजमहिषी बनाया था। बाद में ध्रुवस्वामिनी का पुत्र कुमार गुप्त पिता का उत्तराधिकारी एवं गुप्त साम्राज्य का सम्राट बना था।[17]

इसी प्रकार बाल्मीकीय रामायण भी प्राचीन भारत के एक व्यापक परिदृश्य की झलक प्रस्तुत करती है यद्यपि इसका विहंगम क्षेत्र महाभारत जितना विस्तृत नहीं है।

संस्कृत का शेष साहित्य क्यों नहीं लिया गया

महाकाव्यों के अतिरिक्त गृहसूत्र तथा धर्मसूत्र अत्यन्त सूक्ष्म रूप में नारी की सीमित भूमिका का ही उल्लेख करते हैं। पौराणिक साहित्य में बहुत कुछ महाभारत के अंश दोहराये गये हैं तथा उनमें पौराणिक दृष्टि से अधिक अंधविश्वासी भक्ति का पुट पाया जाता है।[18] पुराकथाओं को मनमाने ढंग से सम्प्रदायों के आधार पर तोड़ा–मरोड़ा गया है। स्मृतियों[19] में पुरातन देवों या ऋषियों के नाम पर सामन्ती तथा वर्ण व्यवस्था

---

(14) कल्याण, वेद कथांक, पृ. 17
(15) बक्शी, आचार्य पदुमलाल पन्नालाल : मेरा देश पृ. 25
(16) बनर्जी, आर. डी; दि एज ऑफ इम्पीरियल गुप्राज पृ. 59,
(17) बनर्जी, आर. डी; दि एज ऑफ इम्पीरियल गुप्राज पृ. 27
(18) श्रीमद् भागवत, अग्निपुराण, भविष्य पुराण आदि
(19) मनु, नारद, याज्ञवाल्क्य, स्मृतियाँ

का पोषण किया गया है। नारी के शोषण का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया गया है।

संस्कृत के अन्य लौकिक ग्रन्थों, यथा भास तथा कालिदास के नाटक तथा काव्य, वाणभट्ट का हर्षचरित, अन्य तकनीकी समाज विज्ञान के ग्रन्थों—कौटलीय अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, वात्सायन का कामसूत्र आदि में सीमित रूप में नारी की भूमिका पर प्रसंगवश थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है। इन सभी में समग्रता का पूर्ण अभाव है। इन्हीं सभी तत्वों को ध्यान में रखते हुये संस्कृत के महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत को ही नारी की राजनीतिक भूमिका पर शोध के लिये आधार बनाया गया।

महाकाव्यों में नारी की राजनीतिक भूमिका से सम्बन्धित विषय वस्तु एवं उसका समय अन्तराल

महाकाव्यों में दो प्रकार के विवरण उपलब्ध है— प्रथम, मूल कथा का घटनाक्रम। रामायण में राम के जीवन कालीन कार्यकलाप एवं तत्सम्बन्धित घटनाक्रम तथा महाभारत में कौरव—पाण्डवों के पास्परिक विग्रह से सम्बन्धित घटनाक्रम तथा आख्यान।

द्वितीय — मूलकथा को आकर्षक, रोचक तथा अधिक ज्ञान एवं सूचनापरक बनाने के आख्यान। दोनों ही प्रकार के विवरणों में नारी की भूमिका से सम्बन्धित कार्यकलापों की जानकारी प्रसंगवश सम्मिलित कर ली गयी है। दोनों महाकाव्यों में धर्म तथा अलौकिकता का पुट है, अतएव इनका अध्ययन करते समय इस कुहासे को फाड़कर वास्तविकता को देखने के लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता है। इनके साथ—साथ दोनों महाकाव्यों में नाना प्रकार की पुराकथायें भी भरी पड़ी हैं। इनमें से बहुत सी पुराकथायें प्रथम दृष्ट्या असम्भव परी कथाओं जैसी प्रतीत होती हैं। इनके वास्तविक अर्थ को

हृदयंगम करने में असमर्थ विद्वानों ने इन्हें विशेष महत्व नहीं दिया।[20] वास्तव में ये पुराकथायें हमें प्राचीन काल के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य बहुत सी बातों की जानकारी प्रदान करती हैं।[21] बहुत सी पुराकथाओं में मानव समाज की आदिम परम्परायें किसी न किसी रूप में सुरक्षित बनी हुयी हैं।[22] पुराकथाओं का आरम्भ उस समय होता है जब कल्पना किसी प्राकृतिक, सामाजिक या आर्थिक–राजनीतिक घटना की व्याख्या एक ऐसे मूर्त प्राणी के रूप में करती है जो मानवीय सत्ता के समान हो।[23] इसी से पुराकथाओं में कल्पना के साथ–साथ सत्य का भी अंश होता है।[24] भारत में तो पुराकथा एवं वास्तविकता में अधिक अन्तर नहीं रहा है।[25]

इतना ही नहीं पुराकथाओं के माध्यम से हमें ऐतिहासिक परिघटनाक्रम के क्रमिक विकासमान रूप का भी दिग्दर्शन होता है क्योंकि ये काल के प्रवाह वेग में नष्ट नहीं होती वरन् नये–नये रूपों में अवतीर्ण होती हुयी लोक में गत्यात्मक बनी रहती है।[26] एक ओर इनका सम्बन्ध पुरातन से बना रहता है, दूसरी ओर नित नूतन लोक जीवन से भी सम्बन्धित रहती हैं।[27] क्योंकि आगे आने वाली पीढ़ियाँ इन पुरा कथाओं का मनन करती हैं उन्हें स्वीकारती हैं एवं नवीन ज्ञान, अनुभव एवं संवेदना के माध्यम से उनको नया अर्थ प्रदान करती हैं।[28] इस प्रकार ये पुराकथायें मानव जीवन के विकासमान विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालने में समर्थ हैं। स्वभावतः बदली परिस्थितियों में नारी की बदलती राजनीतिक भूमिका को भी आलोकित करती हैं। रामायण तथा महाभारत में ऐसी

---

(20) राघव, डॉ. रांगेय : प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, पृ. 98
(21) अर्जुन काश्यप चौबे : आदि भारत, पृ. 117
(22) सत्यव्रत विद्यालंकार : सामाजिक विचारों का इतिहास, पृ. 31
(23) ए.ए. मैकडोनल्ड : वैदिक कथा शास्त्र, पृ.
(24) श्रीराम गोयल : विश्व की प्राचीन सभ्यतायें, पृ. 38
(25) डी.डी. कोसाम्बी : एन इण्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 118
(26) श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ. 16
(27) पं. श्री राम शर्मा आचार्य : वायु पुराण, प्रथम खण्ड, भूमिका पृ. 17
(28) राधाकमल मुखर्जी : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सिविलिजेशन, पृ. 2

पर्याप्त पुराकथायें संग्रहीत हैं। इन पुराकथाओं के अध्ययन में विशेष सावधानी, धैर्य तथा वस्तुनिष्ठ अध्यवसाय एवं दृष्टिकोण की महती आवश्यकता है।

समय अन्तराल

महाकाव्यों में आहार एकत्रण तथा आखेट युग पार करती आदिम बाड़ी कृषि की मातृप्रधान समाज की गर्वोन्नत नारी, पशुपालन युग के पितृप्रधान समाज की अपेक्षाकृत द्वितीय श्रेणी में धकेली गयी नारी, मातृसत्ता तथा पितृसत्ता के समन्वयकाल की नारी तथा सबसे अंत में पशुशक्ति पर आधारित उन्नत कृषि और वाणिज्य युग की परतंत्र नारी का भी दिग्दर्शन होता है। राजनीति के क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन से प्रभावित जन से जन, राज्य और जनपदीय एवं महाजनपदीय राज्यों तथा सार्वभौमिक चक्रवर्ती साम्राज्यों का बदलता तथा विकासमान रूप भी देखने को मिलता है।

सहस्राब्दियों के इस लम्बे समय अन्तराल में नारी की भूमिका निरन्तर गत्यात्मक बनी रही। आहार एकत्रण, अग्नि की खोज जनित आखेट, पशुपालन, कृषि, हस्तशिल्प–गृह उद्योग एवं वाणिज्य–सभी क्षेत्रों का अपना–अपना महत्व और भूमिका रही है। इस जटिल जीवन विन्यास में इन सभी अवयवों की पारस्परिक अन्तःक्रिया और उसमें नारी की भूमिका के अध्ययन से ही नारी की राजनीतिक भूमिका को समझना सम्भव हो सकता है। साथ ही ध्यान रखना होगा कि संरचनाओं के परिवर्तन में क्रान्तिकारी प्रक्रिया विषमता से कई असमानतायें और विरूपण तक हो जाते हैं। यह इतिहास की प्रसव वेदना है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नारी की राजनीतिक भूमिका का अध्ययन करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रक्खा गया है।

---

(29) हेराल्ड व्हीलर : दिस थिंग कॉल्ड हिस्ट्री, पृ. 22

महाकाव्यों के अध्ययन–मार्ग में आने वाली बाधायें

1. सामन्ती जड़ता :

महाकाव्यों को वर्तमान रूप उस काल में मिला जब भारतीय इतिहास में सामन्ती जड़ता, अंधविश्वास, कूप मण्डूकता, असहिष्णुता तथा अवैज्ञानिकता का समावेश हो गया था। सम्भवतः सामन्ती युग के लम्बे अंध समय अन्तराल में महाकाव्यों का अध्ययन समाज विज्ञान के दृष्टिकोणों से हो ही नहीं पाया। साधारण परिघटनाओं को भी अंधविश्वास, अलौकिकता, अंधश्रद्धा के कुहासे में आवृत कर दिया गया। कुछ भी स्पष्ट नहीं देखा जा सका, सम्पूर्ण परिदृश्य घुंधला–धुंधला सा प्रतीत होता था। अट्ठारहवीं शती में जब पुर्नजागरण का सूर्य उदय हुआ तो उसके प्रकाश में महाकाव्यों तथा अन्य पौराणिक साहित्य पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाने लगा। किन्तु इस प्रकार के प्रयासों के लिये सीधासपाट, निष्कण्टक मार्ग उपलब्ध न हो सका। नवीन युग के व्याख्याकार तथा शोधकर्ता के एक ओर कुंआ है तो दूसरी ओर खाई।

वह यदि सत्य का उद्घाटन करता है तो लोग उत्तेजित हो जाते हैं और यदि असत्य का प्रतिपादन करता है तो ईश्वर का कोप भाजन बनता है।[29] नैतिकता से भी गिरता है एवं आत्मकुण्ठा का शिकार बनता है। इधर कुछ दिनों से असहिष्णुता की उत्ताल तरंग वेग से उठती देखी जा सकती है। निहित स्वार्थ, अंध श्रद्धा–विश्वास के नाम पर हर प्रकार की अवैज्ञानिक तथा प्रतिक्रियावादी अवधारणाओं के प्रचार–प्रसार में पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं। ऐसी मानसिकता विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है जो वैज्ञानिक सोच को कुंठित कर रही है। गम्भीर साहित्य के अध्ययन को उपेक्षित किया जा रहा है। घटिया उत्तेजित साहित्य से दुकानें पटी पड़ी हैं। इस क्षेत्र में ग्राशम का सिक्कों का नियम पूरी तरह लागू हो रहा है।[30]

(30) ग्राशम का नियम – घटिया सिक्के अच्छे सिक्कों को चलन से बाहर कर देते हैं। इसी प्रकार घटिया विचार श्रेष्ठ विचारों को चलन से बाहर कर देते हैं।

2. साम्राज्यवाद—राष्ट्रवाद का अंतर्विरोध :

यद्यपि पुर्नजागरण के प्रारम्भ में महाकाव्यों के समाज वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ योरोपियन विद्वानों के द्वारा किया गया किन्तु वे भी निष्पक्ष तथा तटस्थ न रह सके। अपने सम्राज्यवादी हितों से प्रेरित होकर उन्होंने महाकाव्यों के महत्व को तोड़—मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इसी से तत्कालीन योरोपीयों द्वारा लिखा इतिहास प्रशासकीय इतिहास कहा जाता है।(31) योरोपियन ज्ञान—विज्ञान की चकाचौंध से चमत्कृत भारतीय विद्वान भी उसी राह के पथिक बनने लगे। किन्तु यह स्थिति अधिक दिन तक न चल सकी। शीघ्र ही इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी। राष्ट्रीयता की उत्ताल तरंग उठी। प्रमाणित करने का प्रयास किया जाने लगा कि हमारी प्राचीन महाकाव्यीय परम्परा का हर पहलू उदात्त तथा श्रेष्ठ है।(32) इन दो विपरीत धाराओं की अंतक्रिया—प्रतिक्रिया ने निष्पक्ष वैज्ञानिक अध्ययन को प्रभावित किया।

3. अध्यात्मवाद—भौतिकवाद का द्वन्द्व :

इन दोनों विचारधाराओं का द्वन्द्व तो प्राचीन काल से चला आ रहा है। आध्यात्मिक विचारधारा के अनुसार विश्व घटना विकास तथा मानव क्रिया—कलाप, सफलता—असफलता में दैवी नियति ही निर्णायक तत्व है, मानव पुरुषार्थ गौण है। विश्व घटनाक्रम पूर्व निर्धारित हैं जिसकी पूर्व जानकारी मनीषियों द्वारा सम्भव है तथा इसे कुछ धार्मिक अनुष्ठानों या भक्तिभाव पूर्ण पूजा अर्चना से एक सीमा तक प्रभावित भी किया जा सकता है। यह भौतिक जगत दैवी इच्छा का परिणाम है। परमात्मा और उसका अंश आत्मा शाश्वत सत्य तथा निर्विकार है।(33) विश्व मिथ्या तथा स्वप्नवत् है।(34)

---

(31) रोमला थापर : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 17

(32) के. पी. जायसवाल : हिन्दू पॉलिटी, सम्पूर्ण पुस्तक

(33) श्रीमद् भागवत गीता 4.6, 2.18—21,25; वृहद्धर्म पुराण 1.30.47, 51; बाल्मीकीय रामायण महात्म्य, 1.30

(34) ब्रम्ह सत्यं जगत मिथ्या

इसके विपरीत भौतिकवादी विचारधारा किसी भी भौतिकेत्तर सत्ता के अस्तित्व को नकारती है। उसके अनुसार यह विश्व पदार्थ की अंतर्निहित विकासमान गत्यात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है। यह निरन्तर गतिशील, परिवर्तनशील तथा गतिमान है। कार्य कारण की अनन्त श्रृंखला से संचालित है। यह प्रत्येक परिघटना का इतिहास की विशेष अवस्था के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने पर जोर देती है।[35] इसके अनुसार अन्य भौतिक कारकों की भाँति मानव पुरुषार्थ भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इस प्रकार आध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद का द्वन्द्व एक ऐसी भँवर उत्पन्न करता है जो शोधकर्ता को भ्रमित करती है। महाकाव्यों के ऐतिहासिक, वस्तुपरक अध्ययन में अवरोधक बनती हैं। इससे सुरक्षित निकलना एक दुष्कर कार्य है।

4. जन आस्था बनाम वैज्ञानिक सोच की टकराहट :

कुछ दिनों से दो नई प्रवृत्तियाँ भारतीय वैचारिक अंतरिक्ष में कौंधने लगीं हैं, यदा–कदा उनकी गरज भी सुनाई पड़ जाती है। जन आस्था तथा अन्ध श्रद्धा के नाम पर हर प्रकार के प्रगतिशील, जनोन्मुख वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा विचारों को चलन से बाहर करने के प्रयास किये जा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय के शाहबानो सम्बन्धी निर्णय को अप्रभावी करने के लिये संविधान में किया संशोधन, सलमान रश्दी तथा तसलीमा नसरीन के विरुद्ध दिये गये मजहबी फतवे, राम मन्दिर–बाबरी मस्जिद, वाटर तथा फायर फिल्मों के विरुद्ध उत्तेजक प्रदर्शन आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण है। साथ ही इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी देखने को मिल रही है। गणेश मूर्ति को दूध पिलाने, महोबा की चरनशाह के सती होने की घटना को महिमामण्डित करने जैसी घटनाओं के विरुद्ध स्वर मुखरित

(35) कार्ल मार्क्स – फ्रेडरिक एगिल्स : संकलित रचनायें, भाग 3, पृ. 40 प्रगति प्रकाशन मास्को; ऋ. 10.129.1–7

होने लगे हैं। इनका द्वन्द्व भी शोधकर्ता को असमंजस की स्थिति में ला पटकता है।

5. दलित चेतना का उभार :

एक अन्य प्रवृत्ति है दलित समाज में पढ़े–लिखे शिक्षित तथा अपेक्षाकृत उच्च पदस्थ सम्पन्न वर्ग का उद्भव तथा उसकी मुक्ति कामना के प्रयास। इसी परिघटना ने दलित साहित्य तथा दलित साहित्यकारों की एक नई पीढ़ी को जन्म दिया। इनमें से बहुत से बौद्ध धर्म से प्रभावित हैं। हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक साहित्य में शूद्रों के विरुद्ध की गयी उद्घोषणायें, शम्बूक वध, एकलव्य का अंगूठा कटवाना, कर्ण जैसे महारथी तथा अद्वितीय दानवीर को सूतपुत्र कहकर पग–पग पर अपमानित होने जैसे विवरण, शोषक, हृदयहीन वर्ण व्यवस्था को ईश्वरकृत, शाश्वत घोषित कर महिमामण्डित करने आदि ने दलितों के मन में इनके विरुद्ध वितृष्णा तथा घृणा के भाव उत्पन्न कर दिये हैं। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य मनुवादी तथा दलित विरोधी है। यही कारण है कि यदा–कदा रामायण तथा मनुस्मृति की प्रतियों को जलाने अथवा पैरों तले कुचले जाने की घटनायें घट जाती हैं।

इस प्रकार का दृष्टिकोण भी संस्कृत साहित्य के वस्तु परक एवं निष्पक्ष अध्ययन के मार्ग में एक अवरोधक का कार्य करता है। इधर कुछ दिनों से इस प्रकार की अवधारणा के सामान्तर श्रमजीवी दलितों के हाथों एक स्वस्थ संस्कृति उठ रही है। जाति से ऊपर उठकर दलितों की वर्गीय भागीदारी सामने आने लगी।[36] जो एतिहासिक घटनाक्रम के वस्तुपरक अध्ययन को महत्व देती है। इसके अनुसार समग्रता में संस्कृत साहित्य न घोर प्रतिक्रियावादी तथा दलित विरोधी है और न पूरी तरह प्रगतिशील एवं जनगण का मुक्त प्रदाता है। वह तो अपने युग का प्रतिनिधि तथा दर्पण है। इन दलित

(36) रामसुजान अमर : अप संस्कृति बनाम जन संस्कृति, राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 21.4.2001, पृ. 5

अवधारणाओं की भँवर भी वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक अध्ययन में रोड़ा बनती है।

इतिहास साक्षी है कि रोड़े और अवरोध कभी भी मानव सार्थ की राह को अवरुद्ध करने में समर्थ नहीं हुये हैं। मानव पुरुषार्थ द्विगुणित उत्साह से इनका सामना करता है। शोधार्थी इस मत से भी सहमत नहीं है जिसके अनुसार तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन सम्भव ही नहीं है।(37) स्थितियाँ उत्पन्न होती जा रहीं हैं जो दिन पर दिन वस्तुपरक तथा वैज्ञानिक अध्ययन में सहायक होती जा रहीं हैं। पुर्नजागरण के दिनों से ही संसार के विभिन्न और दूरस्थ क्षेत्रों में बसे आदिम जन समाजों के रहन–सहन, जीवन यापन आदि का अध्ययन होता आ रहा है। अमरीकी रेड इण्डियनों, मध्य अमरीकी माया सभ्यता, आस्ट्रेलिया के नीग्रोआइट तथा न्यूजीलैण्ड के माओरी, मध्य अफ्रीका की वन्यजातियों एवं भारत के आदिवासियों के जीवन से सम्बन्धित आंकड़े एवं विवरण एकत्र किये जाते रहे हैं। इनकी सहायता से प्राचीन काल के लोगों के बारे में जानने के पर्याप्त आधार प्राप्त हुये हैं। अध्ययनों के माध्यम से आदिम जनजातियों में सामान्य रूप से प्रचलित टोटम प्रथा की जानकारी मिली। संसार की लगभग सभी आदिम जातियों में विश्वास प्रचलित है कि उनकी जाति का जन्म किसी पशु–पक्षी, वृक्ष–झाड़ी, नदी–पर्वत अथवा सूर्य–चन्द्र से हुआ था। विकसित उन्नत अवस्था में पहुँच जाने पर भी उनमें यह विश्वास चिपका रहता है।(38) श्रीराम के वंश को सूर्यवंश तथा कौरव–पाण्डवों के वंश को चन्द्रवंश कहा जाता है। अमरीका के रेड इण्डियन कबीलों में इस उद्भव स्रोत को टोटम कहा जाता था। इस जानकारी ने संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित पशु–पक्षियों के नाम वाली जातियों के बारे में स्पष्ट कर दिया कि ये लोग बन्दर, भालू, गीध आदि न होकर आदिम टोटमीय मानव कबीले ही थे।(39) इसी प्रकार कई शोधों ने ब्रह्म और यज्ञ जैसे शब्दों के मूल अर्थ पर भी विवेक सम्मत प्रकाश डाला है। सामान्यतः ब्रह्म का अर्थ ईश्वर के रूप

(37) ई. एच. डान्स : इतिहास एक प्रवंचना, पृ. 1

(38) चट्टोपाध्याय, देवी प्रसाद : लोकायत, पृ. 88,92

में लिया जाता है किन्तु वृह्म का ईश्वरीयकरण तो उपनिषद् काल में हुआ था,[40] मूलतः ब्रह्म शब्द मानव के सम्पूर्ण परिवेश–भूगोल–खगोल के लिये प्रयुक्त होता था, जो बाद में सिकुड़कर मानव जाति के लिये प्रयुक्त होने लगा।[41] आजकल यज्ञ शब्द एक धार्मिक कर्मकाण्डी जटिल प्रक्रिया के लिये प्रयुक्त होता है। मूलतः यज्ञ शब्द का अर्थ उत्पादन–वितरण, जिसके अन्तर्गत ज्ञानार्जन भी सम्मिलित है, की सामूहिक व्यवस्था से था। इस प्रकार के नये ज्ञान ने बहुत सी पौराणिक अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने में पर्याप्त सहायता की है।[42]

अब स्पष्ट हो गया है कि प्राचीन इतिहास– पुराण का अध्ययन मात्र 'शव साधना' नहीं है अपितु 'शव परीक्षण' है। यह हमें भूतकाल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराता है, भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है, हमें शिक्षित करता है। जो जाति या राष्ट्र इतिहास से शिक्षा नहीं लेता वहाँ इतिहास अपने आपको दोहराता है।

महाकाव्यों में नारी की राजनीतिक भूमिका विषयक यह अध्ययन हमें अपने प्राचीन इतिहास से परिचित कराता है, शिक्षित करता है। इसी आशा से यह अध्ययन हाथ में लिया गया है कि इसके माध्यम से हम आवश्यक शिक्षा लेंगें और भूलों से बचेगें, विशेष कर नारी से सम्बन्धित क्षेत्र में की गयी भूलों से, जिनके चलते हमारे यहाँ इतिहास अपने आप को दुहराता रहा है।

---

(39) व्यास, शान्ति कुमार नानूराम : इण्डिया इन द रामायन एज, पृ. 59
थामस पी. : इण्डियन वीमन थ्रू दि एजेज, पृ. 19
(40) कोसाम्बी डी.डी. : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृ. 131
(41) वायु पुराण, सृष्टि रचना और दैवी शक्तियां, पृ. 41
डांगे एस.ए. : इण्डिया : फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज़्म टु स्लेवरी, पृ. 54
(42) ठाकुर, लक्ष्मीदत्त : प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन, पृ. 40
सक्सेना, डा. जयदयाल : पौराणिक कथायें (वैज्ञानिक विवेचन)

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

नारी की राजनीतिक भूमिका के निर्धारक तत्व

1. जैविक आधार :

मनुष्य का उद्भव पशु लोक से हुआ है।[1] यह एक सामान्यतः स्वीकृत वैज्ञानिक अवधारणा है। पशु जगत में नर और मादा के बीच प्रजनन सम्बन्धी विशेषताओं के अपवाद को छोड़कर लगभग पूरी समानता पायी जाती है। स्वयं सिद्ध है कि जांगल युग में नर–नारी में पूर्ण समानता, एकरूपता नहीं, रही होगी। काल प्रवाह में तिरते–उतराते, परिस्थितियों के थपेड़ों से आगे बढ़ते जब मानव समाज राज्य सत्ता के तट पर पहुँचा होगा तो कोई कारण नहीं दिखता जिससे प्रमाणित होता हो कि नर सत्ताधारी और नारी द्वितीय श्रेणी में रही हो।

राजसत्ता की दहलीज को नारी–पुरुष ने साथ–साथ पार किया था। जब कहा जाता है कि मनुष्य स्वभावतः राजनीतिक प्राणी है तो मनुष्य का अर्थ पुरुष वर्ग तक ही सीमित नहीं रहता, नर और नारी दोनों मिलकर मनुष्य का निर्माण करते हैं। नारी की भी उतनी ही राजनीतिक भूमिका है जितनी नर की।

2. पौराणिक आधार :

हिन्दू तथा सभी सामी धर्मों (यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम) की पुराकथायें नारी और पुरुष के समान उद्भव तथा समानता का समर्थन करती हैं। हिन्दू पौराणिकता के अनुसार ब्रह्मा के विभाजित शरीर से आदि पुरुष मनु एवं उनकी पत्नी शतरूपा प्रकट हुये थे।[2]

(1) मार्क्स–एंगिल्स : संकलित रचनायें, भाग 3, पृ. 164

(2) भाग. 3.12.52,53

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि प्रजापति ने अपने शरीर के दो भाग किये। एक भाग नर तथा दूसरा नारी बना।[3] अन्यत्र कहा गया है कि मनु के शरीर से ही शतरूपा का जन्म हुआ था।[4] महाभारत में वर्णित है कि मनु का पुत्र–पुत्री (प्रद्युम्न–इला) अपने पुत्र पुरुरवा का माता–पिता दोनों ही था या थी।[5] ओल्ड टेस्टामेन्ट के अनुसार प्रथम नर आदम की पसली तथा उसके माँस से यहोबा (ईश्वर) ने नारी की रचना की थी। नर और नारी एक ही तन के माने गये हैं।[6] ये सभी विवरण पौराणिक शब्दावली में नारी पुरुष समानता का स्पष्ट समर्थन करते हैं। जब दोनों समान हैं तो दोनों की राजनीतिक भूमिका भी समान होनी चाहिये।

पुरुष के समान नारी भी राजनीति में भाग लेने की समान रूप से अधिकारी है।

3. चारित्रिक गुणों का आधार :

कहा जाता है कि पुरुष की तुलना में नारी शारीरिक दृष्टि से अधिक निर्बल तथा कोमल एवं मानसिक दृष्टि से अधिक ममतामयी एवं दयावती होती है। इसके विपरीत पुरुष स्वभावतः उग्र, आक्रामक तथा अहंकारी होता है। पुरुष की ये विशेषतायें उसे राजनीतिक जीवन के अधिक अनुकूल बनाती हैं।

प्रेमचन्द जैसे युगद्रष्टा साहित्यकार भी पुरुष मानसिकता से अछूते न रह सके, उन्होंने कह डाला, 'पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।[7] नारी को भरमाने के लिये

---

(3) हरि. 1.50, 51
(4) वही. 2.2
(5) महा. भा. आदि. 75.19
(6) ओल्ड टेस्टामेन्ट 50, 22, 23, 25
(7) प्रेमचन्द्र : गोदान 13. पृ. 125

पुरुष समाज के ये सोचे–समझे लटके–झटके हैं। इधर उसने नारी को गौरव के उत्तंग शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया साथ ही अगले झटके में उसे नरक का द्वार तथा अवगुणों की खान बता दिया। उसे चारित्रिक पतन की पराकाष्ठा तक पतित घोषित कर दिया, वह स्वतन्त्र रहने के सर्वथा अयोग्य मानी गयी।[8] निरन्तर प्रतिपादित किया गया कि लंका और ट्राय का प्रतिध्वंस तथा महाभारत का सर्वसंहारक महासमर नारी के कारण ही हुआ था। क्या प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध भी नारी के ही कारण लड़े गये थे, पुरुष की साम्राज्यवादी लिप्सा और शोषण की कभी न बुझने वाली आग का परिणाम नहीं थी ?

ये अपरिपक्व पुरुष मानसिकता के निष्कर्ष हैं जिन्हें स्वीकारा नहीं जा सकता। विश्व इतिहास साक्षी है कि राजनीति हो या कोई अन्य क्षेत्र सभी में नारी और पुरुष समय–समय पर सफल और असफल हुये हैं। त्रुटियों के लिये दोनों ही समान रूप से दोषी रहे हैं और दोनों के खातों में उपलब्धियाँ भी दर्ज हुई हैं। राजनीति में भाग लेना जैसे पुरुष के लिये सहज और स्वाभाविक है वैसे ही नारी के लिये भी।

4. श्रम विभाजन का आधार :

मानव जीवन में श्रम–शारीरिक और मानसिक का महत्व निर्विवाद है। मूलतः नारी पुरुष के आधार पर मानवीय क्रियाओं का विभाजन नहीं हुआ। आदिम समाज इसके प्रमाण हैं। कांगो के इतूरी वन के निवासी स्त्री–पुरुष पिग्मी अपने सभी कार्यों में मिलकर समान रूप से भाग लेते हैं।[9] वेदों में भी प्रत्येक कार्य क्षेत्र में नारी पुरुष की समानता को स्वीकारा गया है। नारी को संहोत्र (प्रत्येक कार्य में सहयोगी तथा सहचरी) एवं समन

---

(8) तुलसीदास : रामचरित मानस किष्किन्धा. 14 दोहा. 7 अर्धली
वही. अरण्य. 16 दोहा के बाद की तीसरी चौपाई। वही. लंका. 15 दोहा. 2 अर्धली;
महा. अनु. 20.14, 20, 21 महा. अनु. 38. पूरा अध्याय

(9) हिन्दी विश्व भारती, पृ. 361

(मंत्रणा में समान रूप से भाग लेने वाली) कहा गया है।[10] नारी किसी भी रूप में पुरुष से घटतर नहीं थी, कहीं–कहीं तो वह पुरुष से श्रेष्ठ प्रतीत होती है। पुरुष को निर्देशित तथा नियंत्रित करती है।[11] जब–जब पुरुष ने नारी को हीनतर बताने का प्रयास किया उसने सफलता पूर्वक विरोध किया।[12] यही स्थिति बहुत कुछ लगातार आहार एकत्रण, आखेट, बाड़ी कृषि तथा पशुपालन की प्ररम्भिक अवस्था तक चलती रही। व्यापक पशुपालन तथा पशु शक्ति आधारित विस्तृत कृषि युग में जब मानव ने प्रवेश किया तो स्थिति बदलने लगी।

अतिरिक्त उत्पादन के अम्बार लगने लगे, परिणामतः व्यक्तिगत परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता का उदय हुआ। नारी की उत्पादक श्रम शक्ति घर और उसके आस–पास संकुचित होने लगी, उसका प्रसूति काल बढ़ने लगा, उसी अनुपात में पुरुष वर्चस्व बढ़ने लगा। स्पष्ट है कि नारी स्थिति में ह्रास और पुरुष वर्चस्व में वृद्धि किन्हीं प्राकृतिक कारणों का परिणाम नहीं था अपितु बदली परिस्थितियों का फलन था। अब पुनः परिस्थितियाँ करवट ले रहीं हैं, समाज और राज्य की ओर से प्रसूति तथा शिशु कल्याण की सुविधायें पुनः नारी को प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष लाने की भूमि तैयार कर रही हैं।

5. परिवर्तन वाहक ऊर्जा का आधार :

प्रकृति के अंधे नियमों से संचालित आदिम संसार को (कृत युग) [13] मनुष्य जाति ने अपने मस्तिष्क और शरीर के श्रम से रूपान्तरित किया मूलतः इस श्रम को ही

(10) ऋ. 10.86.10; अथर्व. 20.126.10
(11) ऋ. 1.82.5, 6; ऋ. 8.33.19
(12) अथर्व. 20.126. 9, 19, 20
(13) महा. वन. 149. 11–21

यज्ञ कहा गया है।[14] यज्ञ ने ही एक नई मानवीय दुनिया का सृजन किया। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में नर और नारी की समान भागीदारी रही। कोई आविष्कार या अन्वेषण पुरुष ने किया और कोई नारी ने। नारी और पुरुष दो पैर है जिनके सहारे मानवता आगे बढ़ती आई है। आगे के अध्ययनों में हम देखेंगे कि आयुधों का निर्माण नारियों ने किया[15] तो आग का अन्वेषण पुरुषों ने किया,[16] बाड़ी कृषि तथा प्रारम्भिक पशुपालन का शुभारम्भ नारियों ने किया[17] तो विस्तृत पशुपालन तथा व्यापक कृषि का श्रेय पुरुषों को प्राप्त है।[18] इन परिघटनाओं के बाद आने वाले वाणिज्य तथा औद्योगिक युग में भी निरन्तर नारी और पुरुष के संयुक्त प्रयास युग परिवर्तन हेतु आवश्यक ऊर्जा प्रदान करते रहें। स्पष्ट है कि 'सभी मनुष्य बिना किसी लिंग भेद के परिवर्तन के आवश्यक अभिकर्ता है।'[19]

6. राज्य की प्रकृति का आधार :

राज्य की प्रकृति के सन्दर्भ में प्रमुखतः तीन अवधारणायें हैं। अन्य विचारधारायें इन्ही तीन के अन्तर्गत वर्गीकृत की जा सकती है। ये अवधारणायें हैं

1. जैविक　　2. यांत्रिक तथा　　3. वर्गीय[20]

जैविक अवधारणा :

इस अवधारणा के अनुसार "राज्य एक जीवित प्राणी है और मनुष्य उसके अंग हैं। राज्य व्यक्ति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण तथा मौलिक है। व्यक्ति का अस्तित्व

---

(14) डांगे, एस. ए : इण्डिया : फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी
(15) रामा. अयोध्या. 21.15–17
(16) ऋ. 1. 1. 6;　　ऋ. 1. 31. 1,　　महा. आदि. 5. 7, 8
(17) भाग. 9. 14. 21, 22, 27, 31 हिन्दी विश्व भारती, पृ. 196
(18) महा. आदि. 227. 45,　　वही 228. 20, 34
(19) टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, दिनांक 18 अगस्त 1995, जेण्डर जस्टिस, पृ. 10
(20) सी.एल. नेपर : पॉलीटिकल थॉट, पृ. X

और महत्व राज्य के अन्तर्गत ही सम्भव है। राज्य एक प्राकृतिक, विकासशील तथा मौलिक संस्था है। राज्य के प्रति व्यक्ति के पूर्ण समर्पण में ही उसकी मुक्ति तथा उन्नति समाहित है।"[21] राज्य के प्रति समर्पण का भाव रखते हुये भी यदि पुरुष राज्य के कार्यकलापों में भाग लेता है तो नारी को यह अधिकार क्यों न प्राप्त हो ?

यांत्रिक अवधारणा :

यह अवधारणा राज्य को मनुष्य की एक कृति मानती है। जो सुख–सुविधायें–शान्ति व्यवस्था तथा सम्पन्नता मानव को प्राकृतिक जीवन में उपलब्ध नहीं थी, उन्हें मानव की यह कृति (राज्य) उपलब्ध कराती है। इस प्रकार राज्य एक साधन है, साध्य नहीं। व्यक्ति राज्य का स्वामी है, सेवक नहीं। समाज के विभिन्न हितों में सामंजस्य स्थापित करना राज्य का दायित्व है। इसी से व्यक्ति राजसत्ता को नियन्त्रित तथा निर्देशित करता है।[22] अतएव जैसे पुरुष की राजनीतिक भूमिका है, वैसे ही नारी की भी।

वर्गीय अवधारणा :

इस अवधारणा के अनुसार आदिम साम्यवादी समाज अपने भीतर से ही उद्भूत अतिरिक्त उत्पाद के आघात से विखण्डित हो गया। इस विखण्डन से जो ऊर्जा विकरित हुई उसने तत्कालीन समाज को दो विरोधी वर्गों में विभाजित कर दिया। शक्तिशाली वर्ग ने निर्बल वर्ग के श्रम के दोहन की निरन्तरता को बनाये रखने के

---

(21) यह एक अत्यन्त प्राचीन अवधारणा हैं। इसके सूत्र ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, प्राचीन यूनान, स्टोइक्स मध्यकालीन ईसाई तथा उन्नीसवीं शती के राष्ट्रवादी आदर्शवादी विचारकों में पाये जाते हैं।

(22) यात्रिक अवधारणा को मान्यता अठारहवीं उन्नीसवीं शती में मिली किन्तु इसका प्रारम्भिक रूप महाभारत, शुक्रनीति सार, यूनानी दार्शनिक इपीक्यूरस, रोमन विधि व्यवस्था तथा मध्य कालीन संविदा सिद्धान्त में देखा जा सकता है।

उद्देश्य से एक बाध्यकारी दण्ड सत्ता का गठन किया। यही राज्य का प्रारम्भिक रूप था। निर्बल वर्ग भी अपनी मुक्ति के लिये निरन्तर संघर्षशील रहा।

इस प्रकार से वर्ग संघर्ष की एक लम्बी श्रृंखला का प्रादुर्भाव हुआ। जब भी वर्गों की सापेक्ष स्थिति में परिवर्तन आया, राज्य भी उसी अनुपात में रूपान्तरित होता रहा। जब तक समाज शोषक–शोषित में विभाजित रहेगा, वर्ग संघर्ष चलता रहेगा। एक अवस्था आने पर सर्वहारा की क्रान्ति राज्य पर शोषितों के अधिपत्य को सम्भव बना देगी। सर्वहारा का राज्य क्रमिक रूप से ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करेगा जो वर्गों का अन्त कर देगी, वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी और राज्य स्वतः सूखे पत्तों की तरह ढह जायेगा। इस अवस्था में संघर्ष का स्थान सहयोग, अधिपत्य का स्थान समानता तथा शोषण और दमन का स्थान न्याय ले लेगा।[23]

इस अवधारणा के आधार पर भी समाज के शोषक तथा शोषित दोनों वर्गों के स्त्री–पुरुषों के हित आपस में जुड़े होते हैं। दोनों ही वर्गों के स्त्री–पुरुष के लिये समान रूप से वर्ग संघर्ष में भाग लेना उनकी अनिवार्यता है। इस दृष्टि से राज्य के कार्यकलापों तथा क्रान्ति के वाहक के रूप में स्त्री–पुरुष की समान भूमिका है। पुरुष के समान नारी की भी राजनीतिक भूमिका है।

7. राज्य तथा आर्थिक व्यवस्था का आधार

अति प्राचीन काल से अर्थ व्यवस्था तथा राज्य का चोली–दामन का साथ रहा हैं कौटिल्य ने वार्ता (अर्थ व्यवस्था) तथा दण्डनीति (राज्य व्यवस्था) के घनिष्ट सम्बन्ध का उल्लेख किया है। वार्ता से ही राजकोष तथा सेना की व्यवस्था सम्भव होती है। इन्हीं की

(23) वर्गीय अवधारणा के प्रवर्तक मार्क्स और एगिल्स है। लेनिन और माओ ने इसे व्यवहारिक विस्तार दिया। प्राचीन उपनिषदों तथा महाकाव्यों की पुराकथाओं में वर्ग संघर्ष की झांकी दखने को मिलती है। अराजकतावादी तथा गांधी वादी भी राज्य विहीन अवस्था में विश्वास करते हैं।

सहायता से राजा अपने और शत्रु पक्ष पर नियन्त्रण रखता है।[24] मार्क्सवाद के अनुसार वर्ग संघर्ष के बीच, वर्ग विरोध पर अंकुश रखने के लिये राज्य का जन्म हुआ था। स्वभावतः आर्थिक क्षेत्र के प्रभुत्वशाली वर्ग का राज्य पर अधिपत्य होता है। उत्पीड़ित वर्ग का शोषण करने के लिये शोषकों के हाथ राज्य एक उपकरण का कार्य करता है।[25] भावार्थ यह कि आर्थिक सम्बन्ध राज्य को जन्म देते हैं और राज्य अर्थ व्यवस्था की रक्षा करता है।

प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष किसी न किसी रूप में आर्थिक जगत से जुड़ा होता है। इस रूप में वह स्वतः राज्य से भी जुड़ जाता हैं राज्य उसकी गतिविधि को प्रभावित करता है और वह राजनीतिक कार्यों को। इस दृष्टि से जितनी राजनीतिक भूमिका पुरुष की है उतनी ही नारी की भी।

8. व्यक्तिगत सुरक्षा का आधार :

वैसे तो हर स्त्री–पुरुष की सुरक्षा का दायित्व राज्य का होता है किन्तु हर प्रकार की अशान्ति, उपद्रव, अराजकता तथा युद्ध काल में सबसे अधिक उत्पीड़न का सामना महिलाओं को ही करना पड़ता है।[26] बलात्कार, बिन ब्याही माँ बनना, अवैध सन्तान को जन्म देना और उनके लालन पालन का भार, सामाजिक बहिष्कार तथा कलंकिनी बनकर देह व्यापार के बाजार में बिकने की विवशता, दंश की पीड़ा नारी को ही भुगतनी पड़ती है। पुरुष प्रधान समाज के लिये यह सब परिघटनायें विद्रूप, मनोरंजन तथा पौरुष प्रदर्शन का साधन बनती हैं। पुरुष नियन्त्रित राज्य की न्याय व्यवस्था–पुलिस प्रशासन एवं उसकी कार्यप्रणाली इस प्रकार की घटनाओं को रोकने के स्थान पर

---

(24) कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 1, IV 9

(25) एंगेल्स : परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, सं. रचनायें भाग 3, पृ. 347

(26) अमर उजाला कानपुर, 7 जून 2000 पृ. 5

प्रोत्साहित ही करती है। "महिलाओं तथा बच्चों के खिलाफ हिंसा में संघातिक दर से बढ़ोत्तरी हुई है, सैक्सुअल (यौन) उत्पीड़न का शिकार होने वालियों में तकरीबन तीस फीसदी नबालिग बच्चियाँ होती हैं। महिलाओं के तमाम मामलों में सजा पाने वालों की दर 10 फीसदी से भी कम है।"[27]

भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी नारी को ऐसे ही पैशाचिक हादसों का सामना करना पड़ता है। पाकिस्तान में औरतों को (देह व्यापार के लिये) सब्जी की तरह छू–टटोल कर बेचा–खरीदा जा रहा है। इटली में लड़कियों के बिक्री केन्द्र चल रहे हैं। दक्षिणी–पूर्वी यूरोप में हजारों लड़कियों का क्रय–विक्रय होता है।[28] स्त्रियों के खिलाफ हिंसा पूरी दुनियां में लगभग संक्रामक रोग जैसी स्थिति में पहुँच गयी है।[29]

नेशनल क्राइम रिकार्डस ब्यूरो के अनुसार भारत में महिलाओं के विरुद्ध हर सात मिनट पर एक अपराधिक हमला होता है। एक घण्टा बयालिस मिनट पर एक दहेज हत्या होती है। हर तैंतीस मिनट में नारी ससुरालजनों की प्रताड़ना की शिकार होती है। हर घण्टा एक बलात्कार होता है।[30] पुरुष प्रधान व्यवस्था में नारी जाति और उसके साथ–साथ समस्त मानव जाति के अस्तित्व पर ही संकट के बादल मँडराने लगे हैं। किन्तु मदान्ध पुरुष को इसकी चिन्ता ही नहीं है। नारी के लिये मौत सिर्फ दहेज के अग्निकुण्ड या सती के चबूतरे तक ही सीमित नहीं है। बेटियों की अस्वाभावित मौत का सिलसिला तो काफी पहले जन्म के वक्त से पहले माँ की कोख में रहते ही शुरु हो जाता है। हर साल 10 लाख से अधिक बालिकायें इसलिये मार दी जाती हैं क्योंकि वे नारी वर्ग में जन्म लेती हैं।[31] परिणाम यह है कि जहाँ 1901 में स्त्री–पुरुष अनुपात 972 : 1000

(27) लोक लहर, 19 मार्च 2000, पृ. 7 तथा 28 मई 2000, पृ. 3
(28) अमर उजाला, कानपुर, 13 जून 2000 पृ. 4
(29) संयुक्त राष्ट्र इण्टरनेशनल चिल्ड्रन्स इमरजेंसी फण्ड की रिपोर्ट, अमर उजाला, कानपुर, 1 जुलाई 2000 पृ. 5
(30) राष्ट्रीय सहारा, 3 अप्रैल 1999
(31) आज, 2 जनवरी 1998, पृ. 6

था वह 1991 में 928 : 1000 रह गया।[32] अल्ट्रासाउण्ड आदि की सुविधा के चलते यह अन्तर बढ़ने को ही अभिशप्त है।

इधर नारी जागरण के बढ़ते दबाव के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर नारी अधिकारों के स्वर मुखरित होने लगे हैं। भारत में स्थानीय शासन में कुछ स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित होने लगे हैं। आशा की गयी थी कि इस प्रकार के आरक्षण के चलते स्थानीय स्तर पर महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार होगा किन्तु अभी तो यह आशा आकाश कुसुम ही बनी है। पुरुष मानसिकता इसे सहजता से स्वीकार नहीं कर रही है। एक समाचार के अनुसार बैतूल की एक महिला पंच के साथ उसके विरोधियों ने बलात्कार किया, पुलिस ने प्राथमिकी भी दर्ज नहीं की, परिवारवालों ने इज्जत पर बट्टा लगवाने के नाम पर पीटा, निर्वस्त्र किया और घर से निकाल दिया। यह तो एक उदाहरण है, भारत में करोड़ों महिलायें घरों में पिटती हैं, कार्यालयों में प्रताड़ित होती हैं तथा समाज की असहिष्णुता सहती हैं।[33]

स्थानीय स्तर पर आरक्षण ने महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं किया है। इतने पर भी सामाजिक न्याय के नाम पर कुछ जातिवादी राजनीति करने वाले नेतागण संसद तथा विधान मण्डलों में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का विरोध कर रहे हैं।[34] बाहर ही नहीं घर के भीतर भी नारी सुरक्षित नहीं है। नारी भ्रूण हत्या तथा दहेज हत्या के बाद विधवा नारी का जीवन तो अभिशाप ही है। संतान विहीन युवती विधवा जिन्दा लाश ही है। लाश को घर से बाहर कर शमशान में जला दिया जाता है, विधवा को आजीवन तिल–तिल कर जीवित जलने के लिये वृन्दावन काशी के विधवा आश्रमों रूपी शमशान में पटक दिया जाता है। जो व्यभिचार के अड्डों में बदल चुके हैं। इनमें

(32) अमर उजाला, कानपुर 10 जून 2000 पृ. 6
(33) नवभारत टाइम्स, 12 जून 2000
(34) अमर उजाला, कानपुर 15 जून 2000, पृ. 12

रहने वाली विधवायें वास्तव में जीवित लाश बन गयी है। इनमें न प्रतिरोध करने की शक्ति बची है न इच्छा। ये शोषण को ही अपनी नियति मान चुकी हैं।[35]

इस प्रकार के उत्पीड़नों की विभीषिका से पुरुषों को कभी दो–चार नहीं होना पड़ता। उनसे आशा करना कि वे और उनके द्वारा नियन्त्रित राज्य नारी के उत्पीड़न को रोकेगा और उसे न्यायोचित स्थान दिलायेगा, अपने आप को धोखा देना है। विधान मण्डलों, मंत्रिमण्डलों तथा प्रशासकीय सेवाओं में कुछ स्थान आरक्षित कर देने से कुछ भी होने वाला नहीं है, नारी ठगी ही जाती रहेगी। आवश्यकता है राज्य के क्रिया–कलापों पर नारी की प्रभावी तथा निर्णायक भूमिका सुनिश्चित हो।

9. सामाजिक न्याय का आधार :

समाज के सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार होना चाहिये, समान शब्द का अर्थ एकरूपता नहीं है। किसी के साथ जाति, धर्म, लिंग, सामाजिक तथा अर्थिक स्थिति के आधार पर भेदभाव न किया जाये। इस प्रकार का भेदभाव व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा राज्य और उसके कर्मचारियों, किसी के द्वारा नहीं किया जाना चाहिये। संक्षेप में यही सामाजिक न्याय का सार है। इसी प्रकार की भावना से प्रेरित होकर मानवाधिकारों की रक्षा की भी आवाज उठाई जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तरों पर मानवाधिकार प्रधिकरणों का गठन किया गया है। इतना सब कुछ होने पर भी व्यवहार में देखा जा रहा है कि प्रायः यत्र–तत्र सामाजिक न्याय को कुचल दिया जाता है और मानवाधिकारों का खुला उपहास किया जाता हैं महिलाओं की बड़ी संख्या संविधान तथा कानून प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाती है।[36]

---

(35) कानपुर, अमर उजाला, 1 जून 2000, पृ. 12
(36) कानपुर, अमर उजाला, दिनांक 12.12.97

राज्य के तीनों अंगों के द्वारा किये गये प्रयास प्रायः अप्रभावी ही सिद्ध हो रहे हैं। इस असफलता का अधिकतम दंश प्रायः महिलाओं को ही भुगतना पड़ता है। बांगलादेश के धार्मिक नेता मुहम्मद करीम ने पुरुषों का आवाहन किया कि वे महिला प्रत्याशियों को वोट न दें।(37) पाकिस्तान में दो महिलाओं की गवाही एक पुरुष के बराबर मानी जाती है। इस्लाम में पुरुष द्वारा तीन बार तलाक कहने पर तलाक माना जाता है।(38)

सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों के मार्ग में कालातीत घोर प्रतिक्रियावादी सामन्ती रूढ़ियाँ, परम्परायें, थोथे सामाजिक–धर्मिक–नैतिक आदर्श और मानदण्ड, जातीय और परिवारिक अहम् और दम्भ आदि भयानक, कठोर अवरोध और रोड़े हैं। इन्हीं सब की आड़ में स्वयंवरों के देश में अन्तर्जातीय–अर्न्तधार्मिक विवाहों को अनैतिक तथा धर्म बाह्य घोषित किया जाता है। यहाँ तक कि अभी भी पिछड़ी मानसिकता से ग्रस्त ग्राम पंचायतें ऐसे दुस्साहसिक युगलों को गैर कानूनी रूप से मृत्युदण्ड भी दे देती है और उनके परिवारीजन इस अमानुषिक कृत्य को मूक बने स्वीकार कर लेते हैं। गार्गी, मैत्रेयी, अनुसुइया, सावित्री, विद्योत्तमा, सरोजनी नायडू, फातिमा बीबी, असमां जहांगीर जैसी बिदुषियों और रजिया सुल्ताना, रानी दुर्गावती, चाँद बीबी, महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गा भाभी, चारुलता मजूमदार जैसी वीरांगनाओं के देश में नारी अज्ञानता, कूपमण्डूकता, धार्मिक कठमुल्लावाद, पर्दा–बुरका और घर की सुरक्षा प्राचीर के कारावास में आजन्म कैद की सजा भुगत रही हैं। यह रूढ़ियां और परम्परायें सामन्ती व्यवस्था के अवशेष हैं।

पूंजीवादी राज्य का दायित्व और उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार भी इन्हें समूल नष्ट करना चाहिये। जैसा कि अंग्रेजों ने सती प्रथा को मिटाने के लिये किया था। दुर्भाग्य से 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों के पूंजीवादी राज्य तथा स्वतन्त्रता के

(37) हिन्दुस्तान, लखनऊ दिनांक 2.12.97
(38) आज, दिनांक 2.1.98, 6

बाद भारत के पूंजीवादी राज्य ने अपने अस्तित्व रक्षा के लिये समाजवाद के भय से मरणासन्न सामन्तवाद से समझौता करके उसके अवशेषों को बनाये रखा है। इस राज्य से नारी मुक्ति की आशा करना व्यर्थ है। नारी की जागरूकता तथा संगठित शक्ति ही राज्य को जितना विवश करके आगे बढ़ा दे, उतने ही कदम की आशा की जानी चाहिये।

दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान सभी क्षेत्रों में पुरुष प्रधानता ही परिलक्षित होती है। समाज का बहुत बड़ा तबका जाति और लिंग भेद का शिकार है। सांस्कृतिक स्तर पर भी वह दोयम दर्जे का ही अधिकारी है।[39] सभी क्षेत्रों में सामन्ती युग की भोग्या नारी को ही लक्ष्यकर शर संधाने जा रहे हैं, उसे कर्मयोगी बनवाने या रूपान्तरित करने के लिये नहीं, उसे तो और अधिक रूपसी, योग्या, रमणी, कामनी बनाने के ही उपक्रम किये जा रहे हैं। नारी मुक्ति प्रयासों में जो नारियाँ सक्रिय हैं उनमें से अधिकांश पुरुष मानसिकता से मुक्त नहीं हो पा रही हैं। उन्होंने सहज ही स्वीकार कर लिया है कि नारी को अपने सभी कार्यकलापों के औचित्य को सिद्ध करना एक सहज और स्वभाविक क्रिया है। कदम–कदम पर अग्नि परीक्षा देना नारी की सहज नियति है। परिस्थितियों के थपेड़ों से जर्जर होती इस एकांगी मानसिकता को तोड़ा जाना युग की मांग है। इसके लिये राज्य के प्रभावी हस्तक्षेप के एक धक्के की आवश्यकता है।

लेकिन पुरुष मानसिकता के शिकार राज्य से ऐसी आशा करना व्यर्थ है यह तभी सम्भव है जब नारी की राजनीतिक भूमिका स्वतन्त्र तथा प्रभावकारी हो।

नारी की राजनीतिक भूमिका कितनी प्रभावकारी एवं महत्वपूर्ण है यह उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है। जैविक, परिवर्तन वाहक ऊर्जा के स्रोत, राज्य की प्रकृति, व्यक्तिगत सुरक्षा, सामाजिक न्याय अथवा मानवाधिकार सभी दृष्टियों से पुरुष की तुलना में नारी की राजनीतिक भूमिका अधिक वांछनीय, आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। लेकिन पुरुष के

---

(39) अमर उजाला, कानपुर, 6 मई 2000, पृ. 6

सहयोग या कृपा के सहारे इसे प्राप्त करने की आशा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से काम चलने वाला नहीं है। हर प्रकार के उत्पीड़ित जन गण को अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ती है। नारी भी इसका अपवाद नहीं है।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

राज्य के उद्भव की पृष्ठभूमि

राज्य संस्था न तो अनादि है न दैवी चमत्कार या आकस्मिक बिग बैंग जैसे किसी विस्फोट से उदभूत है। यह तो मानव की विकास यात्रा के एक विशेष चरण में पहुँचने पर अस्तित्वमान हुयी। इसकी पुष्टि हमारे महाकाव्य भी करते हैं।

महाभारत युद्ध की समाप्ति के उपरान्त शरशैया पर लेटे भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को उद्बोधित करते हुये स्पष्ट शब्दों में बताया, ''पूर्व काल में (कृत युग में) न राज्य था न राजा, न दण्ड था, न दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा एक दूसरे की रक्षा करती थी।''[1]

धर्म का अभिप्राय किसी विशेष उपासना पद्धति से नहीं है। प्राकृतिक जीवन प्रणाली ही धर्म था। प्राणियों की परस्पर अन्योन्याश्रिता, प्राकृतिक चयन तथा अनुकूलतम के अस्तित्व मान होने की प्रक्रिया ही धर्म था जो किसी भी प्रकार के पूर्व नियोजित, विवेकाधारित दैवी या मानवीय हस्तक्षेप से पूर्णतया मुक्त था। प्रवाह में काष्टवत उतराता–बहता जीवन निरन्तर गतिमान था। समस्त प्राणी जगत ही प्रजा थी। भीष्म पितामह के इस कथन पर परवर्ती राज्य नियंत्रित समाज की स्पष्ट झलक है। इसी से प्रजा तथा धर्म जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है।

वन्य अवस्था :

मानव जाति के प्रादुर्भाव से ठीक पहले नाना प्रकार की वनस्पतियों तथा जन्तुओं के साथ–साथ अव्यय मानव या पुरुषाभ वानर जैसे प्राणी (होमोसेपियन) इस

---

(1) महा. शान्ति. 59.14

पृथ्वी पर विचरण करते थे। किन परिस्थितियों तथा कार्य—कलापों से गुजरते हुये पुरुषाभ वानरों का रूपान्तरण मानवों में हुआ इसे जानने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास नहीं है।[2] यद्यपि कुछ पुरुषाभ वानरों की हड्डियाँ प्राप्त हुयी हैं किन्तु उनसे भी इस विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती है।[3] फिर भी कल्पना का सहारा लेकर उस काल का चित्र खींचने का प्रयास प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। महाभारत में द्वितीय पाण्डव भीम की जिज्ञासा शान्त करते हुये हनुमान जी ने कृत युग की दशा का वर्णन करते हुये बताया, "कृत युग में सनातन से चला आया धर्म अपनी पूर्व स्थिति में होता था, किसी का कोई कर्तव्य नहीं था। देव, दानव, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस, पन्नग नहीं थे। क्रय—विक्रय नहीं होता था। साम, ऋक, यजुर नहीं थे, मानवी क्रिया नहीं होती थी। ध्यान करने मात्र से फल प्राप्त होते थे। सन्यास ही एक मात्र धर्म था। व्याधियां, इन्द्रिय क्षय नहीं होता था। अपवित्रता, शोक, दर्प, विकृतियाँ नहीं थीं। विग्रह, प्रमाद, द्वेष, भय, सन्ताप, ईर्ष्या, मत्सर न थे। सभी ब्रह्म गति—योग में स्थित थे और सभी का वर्ण शुक्ल था। चारों वर्ण समान तथा स्वतः कर्तव्यरत थे। सबका एक देव, एक मंत्र, एक कार्यविधि, एक वेद, एक धर्म, एक व्रत था। चारों आश्रमों का यथाविधि पालन होता था। सभी कामना रहित कर्म करते थे।[4]

पौराणिक पद्धति में वर्णित कृत युग का यह विवरण मानव पूर्व की जीवन दशा का वर्णन है। यहाँ भी सनातन धर्म से अभिप्राय प्रकृति के स्वाभाविक नियमों से हैं सारे संसार के पुरुषाम वानर एक जैसे थे, उनके जीवन यापन और आचरण में कोई अन्तर नहीं था (देव, दानव आदि न थे)। स्वयंभू प्रवृत्तियों द्वारा प्राप्त सहज अनुभव के अतिरिक्त किसी प्रकार का अर्जित ज्ञान नहीं था (साम आदि वेद नहीं थे)।

---

(2) ऐंगिल्स : परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, जांगल युग
(3) चतुर्वेदी, श्री नारायण (प्र.सं.) हिन्दी विश्व भारती पृ. 76—78, 582—83
(4) महा. वन 149.11—21

किसी का किसी के प्रति कोई कर्तव्य नहीं था, सभी कुछ स्वप्रेरित सहज रूप से होता था। तत्कालित घटनाजनित उत्तेजना ही कार्य करने को उत्प्रेरित करती थी। किसी प्रकार की विवेक पूर्ण, गणनामूलक क्रिया नहीं होती थी। न उपकरण बनते थे, न अग्नि का प्रयोग होता था– यही प्राथमिक मानवी क्रियायें थीं, जो उस समय तक अस्तित्व में नहीं आई थीं। अपना पराया कुछ नहीं था, इसी से किसी प्रकार के मनावेगों का अभाव था। सामूहिक प्राकृतिक जीवन था (ब्रह्म गति–योग) सब एक से थे, न अलग–अलग विपरीत कर्म थे। इसी प्राकृतिक जीवन से पुरुषाभ वानर का मानव के रूप में धीरे–धीरे विभिन्न चरणों में विकास हुआ।

आदिम मानव–पुरुषाभ वानर की शारीरिक संरचना जनित दुर्बलता, साथ ही अपेक्षाकृत सक्षम मस्तिष्क ने उसे विवेक संगत मानवी क्रियाओं की ओर प्रेरित किया। मानवी क्रियायें वे क्रियायें हैं जिन्हें केवल मनुष्य जाति करती है कोई पशु–पक्षी नहीं। आहार, निद्रा, भय, पुनरोत्पादन जैसी क्रियायें तो मनुष्य सहित प्राणी मात्र की क्रियायें हैं, इन्हें मानवी क्रिया नहीं कहा जाता। प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का उपकरणों में रूपान्तरण और प्रयोग ही प्राथमिक मानवी क्रियायें हैं।[5] मानवी क्रियाओं के श्रीगणेश के साथ ही कृत युग समाप्त हुआ और त्रेता का प्रारम्भ हुआ। महाभारत घोषणा करता है कि यज्ञ (मानवी क्रिया) का जन्म त्रेता के प्रारम्भ में हुआ।[6] यह एक युगान्तकारी घटना थी।

नारी की युग परिवर्तनकारी भूमिका :

आयुध निर्माण :

प्राकृतिक संसाधनों का रूपान्तरण तथा प्रयोग सबसे पहले आत्मरक्षा के लिये

---

(5) डांगे, एस.ए. : इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी नामक पुस्तक यज्ञ की व्याख्या हेतु दृष्टव्य है।

(6) महा. सौप्तिक, 18.1; महा. वन. 149.24

किया गया। मानव जाति द्वारा निर्मित प्रथम उपयोगी उपकरण आयुध ही थे। आयुधों के निर्माण, प्रयोगविधि का आविष्कार नारियों ने ही किया। उल्लेख मिलता है : प्रजापति (आदिम मानव यूथों का नेतृत्व वर्ग) की जया और सुप्रभा नामक दो पुत्रियाँ थीं। जया के रूप रहित (प्रकृति में जैसे पदार्थ उपलब्ध थे, बिना रूपान्तरित किये) पचास (50) आयुध पुत्र हुये और सुप्रभा के पचास संहार नामक आयुध पुत्र हुये।[7]

इस आख्यान में पचास का अर्थ संख्यात्मक रूप से नहीं लिया जा सकता यह तो पचास प्रतिशत का प्रतीक है। भाव यह है कि आधे प्रारम्भिक आयुध पत्थर, हड्डी या लकड़ी के अनगढ़, बिना किसी हेर–फेर के बने थे जिनका सीधे–सीधे प्रयोग किया जाता था। शत्रु यदि इनकी चोट से भाग गया तो इसी को विजय समझ लिया जाता था। बाद में नारियों ने ही (सुप्रभा) संसाधनों को रूपान्तरित कर अधिक सक्षम आयुध बनाये। काष्ठ दण्ड के एक सिरे पर बंधे प्रस्तर खण्ड से बनी गदा तथा परशु। नोंकदार पैने बनाये गये प्रस्तर खण्ड, हड्डी तथा लकड़ी के डंडे आदि ऐसे ही आयुध थे। इनसे हिंसक या खतरनाक पशुओं का वध (संहार) किया जा सकता था। नारियों के आयुध निर्माण के कार्य से ही कृत युग के पुरुषाभ वानर त्रेता युग के मानव बने। इस युगान्तरकारी क्रिया में नारी का निर्णायक भूमिका रही।

अग्नि की खोज :

कृत युग में अन्य पशु–पक्षियों की भांति पुरुषाभ वानर भी वृक्षों–लताओं, जीव–जन्तुओं को भस्मसात करती भयानक दावानल को देखता, आतंकित होता और उससे दूर भागता था। वेदों में इस आग को क्रव्यात् (कच्चा मांस खाने वाला पिशाच) कहा गया है।[8] आयुध निर्माण की युगान्तकारी घटना के बाद ही मनुष्य जाति ने क्रव्यात

---

(7) रामा. 1.21.15–17
(8) ऋ. 10.80.7

पिशाच को पालतू बनाया। गुफाओं–झोपड़ियों में अग्नि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। क्रव्यात अग्नि को गार्हपत्य अग्नि की संज्ञा दी गयी।[9] अग्नि के अन्वेषण और उसके व्यवहारिक प्रयोग का श्रेय भृगु तथा अंगिरा ऋषियों को दिया जाता है।[10]

निम्नलिखित उपाख्यान से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि आयुध निर्माण की प्रक्रिया सीखने के उपरान्त ही मानव ने अग्नि का व्यवहारिक प्रयोग सीखा था। उपाख्यान के अनुसार वरुण के यज्ञ (सामूहिक उत्पादन–वितरण–ज्ञानार्जन की मानवी क्रिया) से स्वयं भू, बृह्मा ने अग्नि के द्वारा भृगु को प्राप्त किया।[11] अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि भृगु, बृह्मा का हृदय भेदन कर प्रकट हुये थे।[12] सर्वविदित है कि आदिम मानव यूथों के सभी सदस्य समान होते थे, कोई भी विशिष्ट नहीं होता था। यदा कदा जब कोई व्यक्ति कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त कर लेता था। तभी उसे विशिष्टता प्राप्त होती थी। भृगु के द्वारा अग्नि का अन्वेषण ऐसी ही उपलब्धि थी। इसी से उन्हें आदिम समाज और उसके नेतृत्व वर्ग बृह्मा के सदस्यों में से विशिष्टता प्राप्त हुयी (बृह्मा का हृदय भेदन कर प्रकट होना) भृगु ने अग्नि का अन्वेषण वरुण के यज्ञ–मानवी क्रिया जो आयुध निर्माण ही हो सकती थी, के दौरान ही किया था। अर्थात् यज्ञ क्रिया (सामूहिक आयुध निर्माण) के अस्तित्व में आने के उपरान्त ही अग्नि का प्रयोग सीखा जा सका।

मनुष्य ने आग का व्यवहारिक प्रयोग करना तो सीख लिया, किन्तु शीघ्र ही एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। दावानल से प्राप्त अग्नि जब बुझ जाती थी तो उसे तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता था जब तक कहीं लगी दावानल से पुनः अग्नि न प्राप्त हो जाय। दावानल रोज तो लगती नहीं थी उसे प्राप्त करने में प्रर्याप्त प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। आदिम मानव ने अनुभव किया कि यदि अग्नि में निरन्तर ईंधन डाला जाता

(9) भाग. 9.46, 49
(10) ऋ. 1.1.6, ऋ. 1.31.1; महा. आदि 5.7, 8
(11) महा. आदि, 5.7, 8
(12) महा. आदि. 66.41

रहे तो आग को बुझने से बचाया जा सकता हैं इस विधि का अविष्कार भृगु, मनु और अंगिरा ने किया। आग जलाये रखने के लिये जो ईधन डाला जाता थ उसे 'हवि' कहा जाता था।[13] इसी से इस अग्नि को आहवनीय अग्नि नाम मिला।[14] आग को निरन्तर जलाये रखने की विधि का अविष्कार ही पर्याप्त नहीं था। इस कार्य का दायित्व निभाने वाला भी कोई होना चाहिये। इस दायित्व का बोझ नारियों ने अपने सुदृढ़ कंधों पर उठाया। इस तथ्य की पुष्टि निम्न लिखित पुरा कथा से होती है।

"माहिष्मती नरेश दुर्योधन पर नर्मदा नदी मोहित हो गयी। राजा ने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। नर्मदा के गर्भ से सुदर्शना नामक पुत्री उत्पन्न हुई। युवती होने पर सुदर्शना को अग्नि ने अपनी पत्नी बनाने के लिये राजा से मांगा। राजा ने अग्नि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। निराश अग्नि राजा के यज्ञ से अदृश्य हो गये। बाद में राजा इस शर्त पर पुत्री सुदर्शना का विवाह करने को तैयार हो गये कि अग्नि का निवास उनके नगर में सदैव बना रहे। अग्नि—सुदर्शना का विवाह हो गया। सुदर्शना के गर्भ से सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।"[15]

इस कथा पर परवर्ती काल की छाप दिखाई देती है। उस समय राजसत्ता का उदय ही नहीं हुआ था। अतएव दुर्योधन राजा न होकर अपने जन का मात्र नेता या चौधरी था। उनके पत्नी नर्मदा टोटमीय कबीले की कन्या थी न कि कोई नदी। अग्नि की कोई पत्नी (पालन करने वाली) न थी अर्थात उसे जलाये रखने का दायित्व संभालने को कोई तैयार न था। इसी से आग बुझ (लुप्त) गयी। बाद में सुदर्शना ने यह दायित्व संभाला और अग्नि निरन्तर जलती रही। सुदर्शना के सुदर्शन (भली प्रकार दिखना) नाम पुत्र होने का अभिप्राय है कि आग के ऊष्मा प्रदायक गुण के बाद उसके प्रकाश का

---

(13) ऋ. 8.43.13

(14) भाग. 9.14.46, 49

(15) महा. अनु. 2.5—13, 18—23, 31, 36

उपयोग करने की विधि का आविष्कार भी नारी (सुदर्शना) ने ही किया। बाद में अरणियों के घर्षण से मनुष्य ने आग जलाना सीखा, इसी से मानव द्वारा उत्पन्न अग्नि को जातवेदा (वेद =ज्ञान, जात=उत्पन्न) कहा गया।[16]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आग के उपयोग की विधि और उसके व्यवहारिक प्रयोग के अविष्कार में पुरुष और नारी की बराबरी की सहभागिता रही है। नारी और पुरुष 'संहोत्र' थे अर्थात हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिला कर चलते थे।

आखेट युग तथा मानव के क्षेत्रीय प्रसार में नारी की भूमिका :

आग के आविष्कार (स्त्री–पुरुष के सामूहिक प्रयास) ने आहार एकत्रक युग के मानव को आखेट युग में प्रवेश दिलाया। नारी द्वारा आविष्कृत आयुधों ने आखेट को सुविधाजनक बना दिया। मनुष्य को वनस्पतियों से प्राप्त कच्चे खाद्य के साथ–साथ अग्नि में पके कन्दमूल फल आदि अधिक सुपाच्य भोज्य मिले साथ ही भुनी मछली तथा मांस का प्रचुर प्रोटीन युक्त खाद्य भी सुलभ हो गया। इसने उसके विकास की दर में और वृद्धि की। अब मनुष्य भौगोलिक बन्धनों से मुक्त हो गया। नदियों के किनारे–किनारे दूर–दूर तक उन क्षेत्रों में भी फैल गया जो प्रतिकूल जलवायु वाले थे। उस काल के पत्थर आदि के उपकरण संसार के व्यापक क्षेत्र में पुरातत्वविदों को मिले हैं।[17] विश्व में व्यापक क्षेत्रों में जनसंख्या प्रसार की भौतिक स्थितियाँ (आयुध निर्माण तथा अग्नि का उपयोग) उत्पन्न करने में स्त्री–पुरुष की बराबर की भूमिका रही है। कदाचित नारी की कुछ अधिक ही रही है।

---

(16) भाग. 9.14.46, महा. अनु. 85.45

(17) एंगिल्स, फ्रेडिरिक; परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ. 164, संकलित रचनायें भाग 3

पशु पालन :

आखेट करते–करते संयोगवश कभी–कभी मानव यूथों ने कुछ निरीह पशुओं (भेड़–बकरी आदि) को पकड़ भी लिया और आखेट न मिलने पर भविष्य में उनको मारकर मांस प्राप्त करने के लिये बांधकर रख लिया। इन पशुओं में दूध देने वाले मादा पशु और उनके मेमने भी रहे होंगे। मेमनों को दूध पीते देखकर लड़कियों ने दूध दुहने की कला का अविष्कार किया। इसी से संस्कृत में पुत्रियों को 'दुहिता' (दूध दुहने वाली) भी कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि दक्ष पुत्री सुरभि ने गौ को जन्म दिया।[18] स्पष्ट है कि पशुपालन का प्रारम्भ नारियों ने ही किया। महिलाओं ने तो पशुपालन के महत्व को समझा किन्तु पुरुषों ने प्रारम्भ में इसकी उपेक्षा ही की। ब्रह्मा ने इन्द्र का ध्यान पुरुष जाति द्वारा की जाती इस घोर उपेक्षा की ओर आकर्षित करते हुये कहा था, "इन्द्र, तुमने सदैव गौ (समस्त पशुधन) की अवहेलना की है। गौ को यज्ञ (उत्पादन–वितरण प्रणाली) का अंग तथा साक्षात् यज्ञ रूप बताया गया है।"[19] अन्यत्र श्रीमद्भागवत में वर्णित पुरुरवा–उर्वशी आख्यान भी नारी द्वारा पशुपालन के महत्व देने और पुरुष द्वारा उसकी उपेक्षा या अवहेलना करने की ओर इंगित करता है। उर्वशी ने पुरुरवा के साथ रहने का प्रस्ताव तीन शर्तों के पालन करने पर स्वीकार किया था। प्रथम, पुरुरवा, उवर्शी के दो पालतू मेमनों (भेड़ के बच्चे) की रक्षा करेगा, द्वितीय उर्वशी भोजन में मात्र घी (पालतू–पशु उत्पाद) का ही सेवन करेगी तथा तृतीय, सामान्य अवस्था में पुरुरवा नग्न नहीं रहेगा। पुरुरवा ने तीनों शर्तें स्वीकार कर लीं किन्तु बाद में वह प्रथम तथा तृतीय शर्तों का पालन न कर सका। परिणामस्वरूप उर्वशी उसे छोड़ कर चली गयी।[20]

इस आख्यान में पालतू मेमनों की पुरुष द्वारा रक्षा करने और मात्र घी खाने

---

(18) महा. आदि, 99.8
(19) महा. अनु. 83.15–17
(20) भाग. 9.14.21, 22, 27, 31

की शर्त पशु पालन में नारी की भूमिका को दर्शाती हैं। इससे यह भी संकेत मिलता है कि नारी ने ही पुरुष को वस्त्र पहनने की ओर प्रेरित किया था, उसे सभ्य आचरण करना सिखाया था। हरिवंश पुराण में उल्लेख मिलता है कि धर्म के अश्वमेघ यज्ञ से सुनृता नाम की पुत्री उत्पन्न हुयी थी।[21] इस आख्यान से प्रकट होता है कि नारियों (सुनृता) ने ही घोड़े की सहायता से अज्ञात क्षेत्र में गोचर भूमि, जल स्रोत आदि का पता लगाया था। अश्वमेघ यज्ञ इसी अभियान का मूल रूप है।[22]

नारियों द्वारा पशुपालन के क्षेत्र में मार्ग–दर्शन कराने के उपरान्त ही पुरुष ने पशुपालन के महत्व को समझा और उसमें हाथ बँटाया।

बाड़ी कृषि :

दुधारु पशु पश्चिमोत्तर भारत, दजला–फरात, सर–आभू दरिया, बोल्गा के मैदानों में प्रचुर संख्या में पाये जाते थे। इसी से इन क्षेत्रों में पशुपालन उद्योग व्यापक रूप से अपनाया गया। जिन क्षेत्रों में ऐसे पशुओं का अभाव था जैसे–दक्षिण भारत, मध्य तथा पूर्वी गंगा घाटी, अमरीकी महाद्वीप, आस्ट्रेलिया आदि, वहाँ पशु पालन उद्योग न पनप सका।

ऐसे क्षेत्रों में खाये हुये फलों के बीजों को आवासीय स्थलों के आस–पास पानी पाकर उगता देखकर महिलाओं ने रसोई वाटिका (बाड़ी) कृषि का आविष्कार किया। पुरुष ऐसा आविष्कार न कर सके क्योंकि वे तथा सक्षम स्त्रियाँ बन में आखेट, फल–फूल एकत्रण के लिये जाते थे, घर में बच्चों वाली स्त्रियाँ तथा अग्नि पालक महिलायें ही रह जाती थीं। उन्होंने ही बीजों को उगते देखकर कृषि की नींव डाली।[23]

---

(21) हरिवंश पुराण, 2.8

(22) डांगे : प्रिमिटिव

(23) फ्योदोर कोरोव्किन : प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय, पृ. 26

जिसने आहार एकत्रण तथा आखेट की तुलना में तत्कालीन अर्थ व्यवस्था में अधिक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

आखेट युग से लेकर बाड़ी कृषि तथा पशुपालन युग के प्रारम्भिक चरण तक नारी युग प्रवर्तक की भूमिका निभाती रही। सभी महत्वपूर्ण अविष्कार या तो उसने किये अथवा पुरुषों के साथ बराबर का सहयोग किया। शारीरिक रूप से भी नारी पुरुषों से अधिक शक्तिशाली थी। शूर्पनखा अपने सभी भाइयों–रावण, कुम्भकरण से भी बल पराक्रम में बढ़कर थी।[24]

उत्पादन और वितरण पर नारी का ही स्वामित्व और नियन्त्रण रहा। कुल और गोत्र उसी के नाम पर चलते रहे। जैसे अदिति से आदित्य, दिति से दैत्य, द्रनु से दानव, विनिता से वैनतेय आदि। समाज का ढाँचा मातृप्रधान बना रहा। सम्पूर्ण सामाजिक उत्पाद का यथा आवश्यकता वितरण नारी ही करती थी। इसी से उसेमातृ (मापने वाली) का सम्माननीय नाम मिला।

नारियों ने बाड़ी कृषि में पुरुषों से भी सहयोग करने की अपेक्षा की। प्रारम्भ में पुरुषों ने सहयोग दिया भी किन्तु शीघ्र ही उन्होंने हाथ खींच लिया तथा उसे मिटाने के भी प्रयास किये। इस प्रयास का पौराणिक रूपक राम कथा में देखने को मिलता है। संक्षेप में राम कथा इस प्रकार है :

पृथ्वी से उत्पन्न सीता का विवाह उसी से होना था जो शिव जी के धनुष को तोड़ दे। राम ने उस धनुष को तोड़ दिया और राम का विवाह सीता से हो गया। कुछ समय बाद राम–सीता का निष्कासन कर दिया गया। वन में रावण नामक राक्षस ने सीता का अपहरण कर लिया किन्तु वह सीता को पत्नी न बना सका। राम ने रावण का वध कर सीता का उद्धार किया, उन्होंने भी सीता का त्याग कर दिया। निर्वासित सीता के गर्भ

---

(24) रामा. 3, 17, 24, 25

से लव–कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। बाद में परित्यक्ता सीता पृथ्वी में समा गयी।[25]

रमन्ते सः रामः, जो इच्छायें, कामनायें मानव मन में उठती, घुमड़ती, रमती रहती हैं वे ही राम हैं। महाकाव्य ने इन्हें पुरुष वाचक रूप दिया है। आहार एकत्रण–आखेट युग का मानव आहार उपलब्धि की अनिश्चितता से पीड़ित था। वह ऐसा स्रोत चाहता था जो उसे निश्चित रूप से निरन्तर खाद्य की आपूर्ति करता रहे, उसकी यही इच्छा या कामना राम थी। बाड़ी कृषि ही ऐसा स्रोत था जो उसकी इस कामना की पूर्ति कर सकता था। किन्तु यह तभी सम्भव था जब आखेट युगीन आयुध रूपान्तरित कर कृषि उपकरणों में बदल दिये जायें। शंकर के धनुष को तोड़ने का यही अभिप्राय है। सीता का अर्थ नोकदार उपकरण और उससे भूमि को खोदकर बनी रेखा से है। सीता, बाड़ी कृषि की प्रतीक हैं। कुछ पुरुषों ने अपने आयुधों का रूपान्तरण कर इस भूमि को अपनाया भी। (राम–सीता का विवाह)। किन्तु सभी पुरुष नारी प्रधानता वाली कृषि से सामन्जस्य न बिठा पाये, उन्होंने इसका बहिष्कार किया (राम–सीता का वनवास)। कुछ वन्य जातियों ने इस कृषि को उजाड़ने, नष्ट करने, चुराने का भी प्रयास किया (रावण द्वारा सीता का हरण) कृषि करने वाले स्त्री–पुरुषों ने कृषि की रक्षा की (सीता का रावण के सामने समर्पण से इनकार और राम द्वारा रावण वध कर सीता का उद्धार)।

किन्तु अधिक दिन तक पुरुष कृषि से जुड़े न रह सके। उन्होंने कृषि को उपेक्षित छोड़ दिया। पशु पालन को प्रमुखता देने तथा नई–नई गोचर भूमि की खोज में स्थान परिवर्तन करते रहने से बाड़ी कृषि उपेक्षित हो गयी (सीता को द्वितीय वनवास), कृषि रहित क्षेत्र में छोटी–छोटी झाड़ियाँ (लव) तथा कुश के झाड़ उग आये। कृषि नष्ट हो गयी (सीता का भूमि में प्रवेश)[26] बाड़ी या वाटिका कृषि की उपेक्षा तथा पशुपालन के विस्तार ने पुरुष प्रधानता की नींव डाल दी।

(25) रामायण महाकाव्य
(26) सक्सेना, डॉ. जयदयाल : भारत की पौराणिक कथायें (वैज्ञानिक विश्लेषण), पृ. 12–14

पशुपालन का विस्तार :

पशुपालन की बढ़ती उपयोगिता को देखकर पशुओं के विशाल झुण्ड पाले जाने लगे, उनके लिये विशाल गोचर भूमि तथा पर्याप्त जल वाले जलाशयों तथा सदानारी नदियों का सहारा लिया गया। धीरे–धीरे पशुपालन ने तत्कालीन आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आहार एकत्रण, आखेट तथा बाड़ी कृषि का स्थान गौण हो गया। महिलायें पहले से ही उपकरण–आयुध निर्माण, दुग्ध उत्पाद की देख–रेख, अग्नि की सुरक्षा तथा उत्पाद वितरण में व्यस्त थीं।

इन कारणों से वे विस्तृत क्षेत्र में फैले व्यापक पशु पालन धन्धे में पुरुषों के साथ बराबरी से हाथ न बंटा सकीं। स्वाभाविक रूप से उस युग का सबसे प्रमुख धन्धा–पशुपालन, उसका प्रबन्धन तथा स्वामित्व पुरुषों के हाथ में चला गया। देखा गया है कि जिनके हाथों में उत्पादन के प्रमुख साधन होते हैं, अन्ततोगत्वा वे ही समाज में प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं। उस समय भी ऐसा ही हुआ। मातृ प्रधानता ह्रासमान स्थिति को प्राप्त होने लगी और पितृ प्रधान समाज की नींव सुदृढ़ होती चली गयी। प्रधानता का हस्तान्तरण एकाएक झटके से एक ही बार में नहीं हो गया, धीरे–धीरे कई चरणों में हुआ।

मातृ–पितृ सत्ता का सहअस्तित्व :

प्रारम्भ में मातृ सत्ता तथा पितृ सत्ता दोनों साथ–साथ चली। जहाँ उपयोगी पशुपालन की सुविधा थी वहाँ पितृ सत्ता तथा ऐसे पशुओं के अभाव की स्थिति में मानव सभ्यता मातृ सत्तात्मक आखेट तथा बाड़ी व्यवस्था तक ही घनीभूत होकर रह गयी। दोनों के साथ–साथ चलने का साक्ष्य इला–सुद्युम्न नाम का पुत्र बन गई। एक बार सुद्युम्न के उपाख्यान में भली–भाँति देखने को मिलता है। उल्लेख मिलता है कि मनु की पुत्री इला,

हरि के वरदान से सुद्युम्न नाम का पुत्र बन गई। एक बार सुद्युम्न आखेट के निमित्त वन में गये। वन में प्रवेश करते ही वे शंकर जी के शाप से पुनः स्त्री बन गये। स्त्री रूप में इला का संयोग चन्द्रमा के पुत्र बुध से हुआ। समय आने पर इला के गर्भ से पुरुरवा नामक पुत्र ने जन्म लिया। बाद में शंकर जी के वरदान से इला एक माह तक स्त्री तथा एक माह तक पुरुष रूप धारण करते रहे।[27] पुरुष रूप में ही सुद्युम्न ने पुरुरवा को अपना राज्य सौंपा था। इस प्रकार इला–प्रद्युम्न पुरुरवा की माता–पिता दोनों थी या था।[28]

यह कथा स्पष्टतः मातृ सत्ता तथा पितृ सत्ता के साथ–साथ समान्तर चलते रहने की अवस्था की ओर इंगित करती है। कालान्तर में दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं में कुछ शर्तों के साथ समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया। शान्तनु–गंगा के विवाह की पुराकथा इस प्रयास पर पौराणिक पद्धति से प्रकाश डालती है। शान्तनु का विवाह गंगा के साथ तीन शर्तों के अन्तर्गत हुआ। प्रथम, शान्तनु, गंगा को किसी प्रकार का काम करने से नहीं रोकेंगे, द्वितीय, गंगा के प्रति शान्तनु कभी अप्रिय वचनों को नहीं बोलेंगे और तृतीय, किसी भी शर्त का उल्लंघन होने पर सम्बन्ध विच्छेद हो जायेंगे। एक–एक कर शान्तनु के गंगा के गर्भ से सात पुत्र हुये जिन्हें गंगा ने गंगा नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। आठवें पुत्र को शान्तनु ने गंगा जल में प्रवाहित न होने दिया और अपने पास रख लिया। प्रथम शर्त का उल्लंघन हुआ और गंगा शान्तनु को छोड़कर अर्न्तध्यान हो गयी।[29]

इस कथा में शान्तनु पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के तथा गंगा मातृ सत्तात्मक टोटमीय व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसिद्ध है कि आर्यजन (शान्तनु आर्यों के भरत जन के सदस्य थे) पितृसत्तात्मक थे। गंगा नामक युवती टोटमीय जन 'गंगा' की सदस्या

(27) भाग 9.1.16, 22, 26, 35, 39 रामा. 7.87.7, 16, 27
(28) महा. आदि. 75.19
(29) महा. आदि. 98. 3–5, 13, 16, 17

थी। गंगा जन मातृसत्तात्मक जन था। गंगा द्वारा प्रस्तावित शर्तें इस बात का प्रमाण है। मातृ सत्तात्मक जनों में स्त्रियों के ही आदेश चलते हैं, उन्हें रोकने का अधिकार किसी पुरुष को नहीं होता। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी पुरुष ऐसी बात नहीं कह सकता जो उन्हें अप्रिय लगे। शान्तनु–गंगा के प्रथम सात पुत्र अपनी माता के मातृसत्तात्मक गोत्र में सम्मिलित किये जाते रहे (गंगा जल में प्रवाहित करके) मातृ प्रधान समाजों का यही नियम होता है।

आर्यों का पुत्र प्रेम और वंशपरम्परा का चलते रहने की उत्कण्ठा तो सर्वविदित है। आठवें पुत्र को शान्तनु ने गंगा जन का सदस्य न होने दिया और भरत जन का (अपने पितृसत्तात्मक जन) सदस्य बना लिया। दो व्यवस्थाओं का सम्बन्ध आगे न बढ़ सका, समाप्त हो गया।

लेकिन एकीकरण के प्रयास चलते रहे। दोनों पक्ष कुछ–कुछ झुके। ले देकर समझौते का मार्ग प्रशस्त किया गया। ऋष्य श्रंग की कथा इस प्रयास की साक्षी है।

विमाण्डक मुनि और एक मृगी के संयोग से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक के सिर पर एक सींग (श्रंग) था। इसी से उस बालक का नाम ऋष्यश्रंग या श्रंगीऋषि पड़ गया।[30] इस पुराकथा में विभाण्डक पितृसत्तात्मक आर्य जन के सदस्य थे और वह युवती जिसके सम्पर्क में वह आये मातृ सत्तात्मक जन, जिसका टोटम मृग (हिरन) था, की सदस्या थी। यहाँ भी प्रश्न उठा कि पुत्र पितृकुल का माना जाय या मातृ कुल का ? किस कुल की परम्परायें, मान्यतायें, रीतिरिवाज ग्रहण करे। अन्त में समझौता हुआ। पुत्र ने मातृकुल की कुछ परम्परायें छोड़ी (हिरन के दो सींग होते हैं, श्रंगी ऋषि के एक ही सींग था, एक छोड़ना पड़ा) तथा पितृकुल की कुछ स्वीकारीं (पुरुषों के सिर पर सींग नहीं होते एक स्वीकारा गया)। इस प्रकार मातृ और पितृ सत्ता में बराबरी के आधार पर समन्वय

---

(30) महा. वन. 110.35–39

स्थापित किया गया।

पुरुष वर्चस्व :

पशु पालन के बढ़ते चरणों के साथ यह बराबरी अधिक दिन तक न चल सकी। पशुपालन युग में जन निरन्तर नये–नये गोचर स्थलों के अन्वेषण करने के लिये अज्ञात, खतरनाक वन्य क्षेत्रों में अन्वेषण अभियान चलाते रहते थे। प्रारम्भिक चरण में इस अभियान दल में सक्षम स्त्री–पुरुष दोनों ही बराबरी से भाग लेते थे। शायद महिलायें आगे ही रहती थीं। उल्लेखनीय है कि विश्वामित्र की बड़ी बहिन सत्यवती ने कौशकी नदी का अन्वेषण किया था।[31] किन्तु पशुपालन के विस्तार के साथ पुरुष नारियों को अपने साथ ले जाने में हिचकिचाने लगे और उन्हें वन में साथ जाने को हतोत्साहित करके घरों में ही रहने को प्रेरित करने लगे। इस सन्दर्भ में एक बहुत ही मनोरंजक प्रकरण अथर्ववेद में मिलता है। एक पुरुष नारी शक्ति से आतंकित होकर प्रार्थना करता है, "कोई स्त्री मुझसे अधिक सुन्दर परिश्रमी, सहनशील, शारीरिक दृढ़ता सम्पन्न न हो।" बाद में अज्ञात क्षेत्रों में अपने साथ चलने को पुरुष हतोत्साहित करते हुये नारी से कहता है, "आगे घने वन और निर्जल विस्तृत क्षेत्र है। मार्ग में पाये जाने वाले दासों तथा आर्यों (शत्रु–मित्र) की पहचान करता हुआ आगे बढ़ता हूँ। तू समीपवर्ती घरों में ही रह।" किन्तु नारी पुरुष के परामर्श को दृढ़ता पूर्वक ठुकराती हुयी कहती है, "यह उपकारी पुरुष मुझे कायर समझता है। मै ऐसी नहीं हूँ। मैं वीरणी, इन्द्रपत्नी, महीयती, मरुत्सखा हूँ। पूर्व काल में भी नारी ऐसी ही संहोत्र, समन (कार्य क्षेत्र तथा मंत्रणा में सहधर्मी) ऋतस्य वेधा (मौलिक प्राकृतिक नियमों की अन्वेषक रही है।")[32]

प्रकरण यहीं समाप्त हो जाता है। स्पष्ट नहीं है कि नारी पुरुष के साथ वन

---
(31) रामा. 1.34.7, 8
(32) अथर्व. 20.126.6, 9, 10, 19, 20

में गई या नहीं। इतना स्पष्ट है कि पशु पालन युग में नारी ने आसानी से पुरुष वर्चस्व को स्वीकार नहीं किया। वह अपने गौरवशाली अतीत को भूल नहीं पा रही थी। पूरी सम्भावना है कि आगे चलकर अथर्ववेद के इस प्रकरण ने रामायण महाकाव्य में राम के साथ वन में सीता के चलने के सफल आग्रह तथा राम द्वारा मना किये जाने के रूप में स्थान पा लिया हो। रामकथा के कलेवर में बाड़ीकृषि तथा पशुपालन के लिये नये–नये गोचर क्षेत्रों के अन्वेषण के प्रयास समाहित हैं।

कृषि का विस्तार, पशुशक्ति का योगदान :

तत्कालीन परिस्थितियों में जब पशुपालन विकास की चरम स्थिति पर पहुँच गया तब पुरुषों का ध्यान बाड़ी कृषि की ओर गया। उन्होंने पशु शक्ति के प्रयाग से कृषि को व्यापक रूप देने का आयोजन किया। खाण्डव वन दहन आख्यान इसी ओर इंगित करता है।

एक बार श्री कृष्ण और अर्जुन के पास मानव रूप धारण कर अग्निदेव पधारे। अग्नि ने कहा, "यज्ञों में अत्यधिक घी पी जाने से मुझे अजीर्ण हो गया है। प्राणियों समेत खण्डव वन का भक्षण करने से मेरी यह अजीर्णता ठीक हो सकती है। इन्द्र और उनका सहयोगी तक्षक यह कार्य नहीं होने देते। इन्द्र वर्षा कर आग को बुझा देता है, आप लोग मेरी सहायता करें। इसके उपलक्ष्य में मैं अर्जुन को गांडीव धनुष, अक्षय तुणीर तथा सुदृढ़ रथ और श्रीकृष्ण को चक्र तथा कौमेद नामक गदा प्रदान करता हूँ।" श्री कृष्ण–अर्जुन ने सहायता करने का वचन दिया।

अग्नि ने खाण्डव वन को जलाना प्रारम्भ किया। इन्द्र और उनके सहायक देवगणों, दैत्यों, दानवों ने अग्नि बुझाने तथा कृष्ण–अर्जुन को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया किन्तु असफल ही रहे। अधिकांश वन्य जीव–जन्तु तथा कुछ वनवासी

खाण्डव वन समेत जल कर राख हो गये।[33] इस पुराकथा की व्याख्या इस प्रकार है–

पशुपालन तथा उससे प्राप्त दुग्ध उत्पाद एवं मांस का विकास चरम स्थिति तक पहुँच चुका था। आगे विकास सम्भव नहीं हो पा रहा था। यही था अग्नि को अजीर्ण होने का रहस्य। विकास के अगले चरण में प्रवेश के लिये आवश्यक था कि बाड़ी कृषि का विस्तार किया जाय। इसके लिये कृषि में पशु शक्ति का प्रयोग तथा नई कृषि योग्य स्थाई भूमि प्राप्त की जाये। स्वाभाविक था कि परिव्राजक चारागाह युग के आकाशीय देवता स्थाई रूप से एक स्थान पर बसने वाले कृषकों के काम के नहीं रह गये थे। खाण्डव वन दाह में देव विरोध का यही अभिप्राय है। आखेटप्रिय जातियों ने (दैत्य, दानव, नाग) भी वनों के विनाश का विरोध किया था।

कृषि के विकास के इस चरण की वाहक ऊर्जा की लगभग सम्पूर्ण आपूर्ति पुरुषों द्वारा ही की गयी थी, महिलाओं का योग लगभग नगण्य ही है। व्यापक पशुपालन तथा उन्नत कृषि के युग में नारी वर्चस्व ने पुरुष श्रेष्ठता के लिये सिंहासन खाली कर दिया। दृष्टव्य है कि इला, जो नारी पुरुष दोनों रूप में रहता था, अन्तोगत्वा अन्तिम रूप से पूरी तरह से पुरुष बन गया। अर्थात पुरुष की श्रेष्ठता स्थापित हो गयी।[34]

अतिरिक्त उत्पादन पूर्व का युग :

आहार एकत्रण, आखेट, बाड़ी कृषि तथा पशुपालन के प्रारम्भिक चरण में मानव समूह सामूहिक रूप से भी उतना ही उत्पादन कर पाते थे जो उनके दैनिक उपयोग के लिये ही पर्याप्त हो पता था। भविष्य के उपयोग के लिये बचाकर रखने के लिये कुछ बचता भी नहीं था, यदि कुछ बचता भी था तो उसे सुरक्षित रखने के साधन

---

(33) महा. आदि. 227.45, आदि 228.20, 34

(34) रामा. 7.90.19

तथा उपाय नहीं थे। वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता था। उन सभी लोगों को अपना आहार स्वयं जुटाना पड़ता था। दूसरे के श्रम के सहारे किसी के लिये भी बिना श्रम किये जीवन यापन सम्भव नहीं था। मथुरा का तथाकथित राजा होने पर भी लवणासुर को अपना आहार एकत्र करने या आखेट करने स्वयं ही नित्य वन में जाना पड़ता था।[35]

अभी मानव की उत्पादन क्षमता इतनी नहीं हो पाई थी कि लवणासुर अपने सहयोगियों या सेवकों से अपने लिये आहार एकत्र करा सकता। लवणासुर अपने जन का वैसा ही नेता या नायक था जैसा कि पशु समूहों में उनका कोई नेता होता है। उपयोग के बाद बचाकर रखने के लिये कुछ नहीं बचता था। इसी से इस युग को अतिरिक्त उत्पादन के पूर्व का युग कहा जाता है। इसकी पुष्टि अगस्त द्वारा तथाकथित राजाओं से दान की याचना करने के आख्यान से होती है। अगस्त ऋषि से लोपामुद्रा नामक युवती ने अपने लिये बहुमूल्य आभूषण आदि लाने की शर्त पर सम्बन्ध स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की। अगस्त ऋषि धन प्राप्त करने के उद्देश्य से एक के बाद एक तीन नरेशों श्रुतर्वा, ब्रधश्व तथा त्रसदस्यु के पास गये। तीनों राजाओं का आय–व्यय पूरी तरह संतुलित था। अगस्त को देने के लिये उनके पास कुछ भी नहीं था उन्हें पता चला कि असुर राज इल्बल के पास अतिरिक्त धन है। वह इल्बल के पास धन याचना के लिये गये। इल्बल ने अपने सोने के रथ पर बिठाकर उनका अपहरण और वध करना चाहा। अगस्त ऋषि ने अपनी हुंकारों से उसका वध कर दिया।[36] इस आख्यान से चार निष्कर्ष निकलते है।

प्रथम, अभी अधिकांशजन अतिरिक्त उत्पादन के पूर्व ही अवस्था में थे। वे इतना उत्पादन करने में सक्षम नहीं थे कि अपने उपभोग के बाद कुछ बचा सकें जिसे

---

(35) राम. 7.63.26 रामा. 7.67.26

(36) महा. वन. 98.4, 11, 12, 17, 20;
महा. वन. 99.12, 16, 18

दूसरे लोग ले सकें।

द्वितीय, नारियों ने ही जनों को अतिरिक्त उत्पाद को उत्पन्न करने के लिये प्रेरित किया। (लोपामुद्रा द्वारा आभूषणों की मांग)

तृतीय, कुछ जन अतिरिक्त उत्पाद करने की स्थिति में पहुँच गये थे। किन्तु वह भी इतना पर्याप्त नहीं था जिससे श्रम से मुक्त परजीवी अपना जीवन यापन कर सकें, फिर भी इस अल्प उत्पाद के हरण के लिये प्रयास होने लगे थे।

चतुर्थ, अभी मुद्रा का प्रचलन प्रारम्भ नहीं हुआ था (लोपा मुद्रा) अर्थात विनिमय या व्यापार सम्भव नहीं था भले ही थोड़ी बहुत अदला–बदली होने लगी हो।

एक अन्य आख्यान में उल्लेख मिलता है कि सतयुग के अन्त और त्रेता के प्रारम्भ में सुवर्चा नामक एक राजा थे। वे अपना सम्पूर्ण धन दान कर देते थे इससे राजकोष खाली रहता था। कोष के अभाव में सेना का संगठन सम्भव नहीं था। सेनाविहीन राज्य पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। राजा ने मुँह पर हाथ रखकर शंख ध्वनि की। ध्वनि से एक विशाल सेना प्रकट हो गयी। सेना की सहायता से राजा ने शत्रु पर विजय प्राप्त की।[37]

यह पुराकथा अतिरिक्त उत्पादन पूर्व की स्थिति (रिक्त राजकोष) की ओर संकेत करती है। प्रत्येक जन एक स्वप्रेरित, सशस्त्र संगठन था (पाषाण कालीन आयुध)। स्थाई सेना नहीं थी। संकटकाल या आक्रमण की सूचना मिलते ही। (मुंह से शंखध्वनि) सभी सक्षम व्यक्ति उपलब्ध आयुध लेकर स्वतः व्यूहबद्ध हो जाते थे।

किसी भी व्यक्ति या जन के श्रम को दोहन कोई अन्य जन या व्यक्ति नहीं कर सकता था। यदि किसी के श्रम का दोहन किसी अन्य के द्वारा किया जाता तो शोषित व्यक्ति स्वयं अपंगु, मरणासन्न हो जाता था। अतएव श्रम शोषण असम्भव था।

---

(37) महा. आश्व. 4.12, 15–17

शाण्डिली तपस्विनी थी, वह अत्यन्त धर्मपरायणा तथा सदाचारिणी थी। गरुण जी उसके तप से बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने उसे अपनी शक्ति से उच्च लोकों में भेजने का संकल्प लिया। तपस्विनी उनके संकल्प को जान गयी। गरुण के इस संकल्प को उसने अपनी निन्दा के रूप में लिया। शाण्डिली के असंतोष के फलस्वरूप गरुण पंखरहित हो गये, वे स्वयं उड़ने में असमर्थ हो गये। गरुण अपनी भूल पर अत्यन्त लज्जित हुये। उन्होंने शाण्डिली से क्षमा याचना की। शाण्डिली ने उन्हें क्षमा कर दिया। वह पुनः पंखयुक्त हो गये।[38]

इस आख्यान से दो निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के श्रम का लाभ, भले ही उसकी इच्छा से ही क्यों न दिया गया हो, कोई दूसरा उठाने की स्थिति में नहीं था। यदि श्रमदानी ऐसा करता भी था तो वह स्वयं अक्षम हो जाता था। प्रत्येक को स्वयं प्रयास करना पड़ता था। द्वितीय नारियों ने (शाण्डिली) कभी दूसरे के श्रम से लाभान्वित होने की प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया।

इसी समय अन्तराल में ज्ञान–विज्ञान, अविष्कार, अन्वेषणों तथा प्रविधिकी का सार्थ निरन्तर विकास के पथ पर आगे बढ़ता रहा साथ ही मानव की उत्पादन क्षमता भी बढ़ती रही। धीरे–धीरे वह अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति से भी अधिक उत्पादन करने की स्थिति में आ गया। किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में इतना अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता था जिससे एक के श्रम उत्पाद के सहारे किसी अन्य की सभी अनिवार्य आवश्यकतायें पूरी हो सकें। केवल आंशिक आवश्यकतायें ही पूरी हो सकती थी। गालव मुनि का आख्यान इसकी पुष्टि करता है।

गालव मुनि को अपने गुरु विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा चुकाने के लिये आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये गालव ने

(38) महा. उद्योग, 113.4, 8–14

राजा ययाति से याचना की। राजा ने गालव की मांग पूरी करने में असमर्थता प्रकट की। उन्होंने अपनी पुत्री माधवी, मुनि को प्रदान की जिसके शुल्क से वे किसी भी राजा से घोड़े प्राप्त कर सकते थे। मुनि उस कन्या को लेकर राजा हर्यश्व के पास गये। राज हर्यश्व मात्र 200 श्यामकर्ण घोड़े ही दे सके। बदले में उन्होंने ययाति की पुत्री माधवी को एक वर्ष तक अपने पास रक्खा। उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ वे इसी क्रम में माधवी को एक–एक कर दो और राजाओं दिवोदास तथा उशीनर के पास माधवी ले गये। दोनों ने दो–दो सौ श्याम कर्ण घोड़े देकर माधवी को एक–एक वर्ष अपने पास रक्खा और उस से एक–एक पुत्र उत्पन्न किया। छैः सौ घोड़े और माधवी को लेकर गालव अपने गुरु विश्वामित्र के पास गये। छैः सौ घोड़े लेकर शेष दो सौ घोड़ों के बदले विश्वामित्र ने भी माधवी को एक साल तक अपने पास रक्खा और उससे एक पुत्र उत्पन्न किया। अन्त में माधवी मृगी रूप में वन में तपस्या करने चली गयी।[39]

इस पुराकथा से स्पष्ट आभास होता है कि मनुष्य जाति धीरे–धीरे अतिरिक्त उत्पादन के युग में प्रवेश करती जा रही थी। किन्तु अभी उत्पादन इतना नहीं हो पा रहा था जिससे कुछ व्यक्तियों के श्रम उत्पाद से किसी अन्य का काम चल सके। बहुतों के श्रम के दोहन से ही एक व्यक्ति की पूरी आवश्यकतायें पूरी की जा सकती थीं। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि इस प्रक्रिया में सबसे अधिक शोषण नारी (माधवी) का ही किया गया। इसी से माधवी ऐसे हृदयहीन शोषक समाज को छोड़कर अपेक्षाकृत पिछड़े मृग टोटमीय कबीले में जा मिली।

---

(39) महा. उद्योग. 115.12, 13
महा. उद्योग. 116.16
महा. उद्योग. 117.18
महा. उद्योग. 118.13, 21
महा. उद्योग. 119.18
महा. उद्योग. 120.7

कुछ समय पश्चात मानव की उत्पादन क्षमता में और वृद्धि हुयी। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने लगी जिसमें कुछ के श्रम के बल–बूते पर कुछ विलासिता पूर्ण स्वर्गिक वैभव का आनन्द लेने में समर्थ हो गये। राजा ययाति का पुनः स्वर्गारोहण का आख्यान इसी ओर संकेत करता है।

स्वर्ग में रहते–रहते राजा ययाति के पुण्य क्षीण हो गये। पुण्य क्षीण होने पर राजा स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर कुछ सत्पुरुषों के बीच आ गये। वे सत्पुरुष राजा ययाति के दौहित्र (नाती) थे। उन लोगों ने अपने पुण्य राजा को दे दिये, जिनके बल पर राजा पुनः स्वर्ग में पहुँच कर सुख भोगने लगे।[40]

मनुष्य के द्वारा मनुष्य के दोहन का सूत्रपात हो गया। अतिरिक्त उत्पादन और उस पर अधिपत्य ने ही वे भौतिक स्थितियाँ उत्पन्न की जिनसे राज्य सत्ता का जन्म हुआ। इस स्थिति को लाने में नारी–पुरुष ने अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। दोनों का अपना–अपना महत्व है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हमारी महाकाव्यीय परम्परा के अनुसार मानव की यात्रा पशु एवं वन्य जगत से प्रारम्भ होती है। इस निष्कर्ष की पुष्टि आधुनिक समाज विज्ञान भी करता है। कृत युग (सत्य युग) का वर्णन हमारी धार्मिक परम्परा में आदर्श स्वर्णयुग जैसा किया गया है। वास्तव में यह प्राकृतिक जीवन ही था। परिस्थितियों के थपेड़ों से उत्प्रेरित मानव ने अपनी विकास यात्रा कृत युग से ही प्रारम्भ की। वह विभिन्न अवस्थाओं को लांघता हुआ निरन्तर आगे बढ़ रहा है। अपने इसी अभियान के दौरान मानव जाति (नारी और पुरुष) ने नाना प्रकार के अन्वेषण–आविष्कार किये, नई–नई प्राविधिकी विकसित की। आत्मरक्षा के लिये नाना प्रकार के आयुध बनाये, अग्नि को पालतू बनाया, शाकाहारी के साथ–साथ माँसाहारी बना, पशुपालन सीखा, बाड़ी और

---

(40) महा. उद्योग. 121.17
महा. उद्योग. 122.16, 17

व्यापक कृषि के क्षेत्र में उतरा और आदान–प्रदान के द्वार को लांघते हुये वाणिज्य के पथ पर अग्रसर हुआ। मातृ–पितृ सत्तात्मक व्यवस्थायें अस्तित्व में आईं, उनमें समन्वय हुआ और समय पाकर क्रमशः मातृसत्ता, पितृसत्ता में विलीन हो गई। नई–नई प्राविधिकी का सम्बल पाकर मानव समाज की उत्पादन क्षमता में भी निरन्तर वृद्धि होती गई। इस सम्पूर्ण अभियान में नारी–पुरुष ने कदम से कदम मिलाकर पग बढ़ाये। ऐसा भी हुआ कि कहीं नारी की भूमिका प्रभावशाली हुई कहीं पुरुष की। किन्तु सभ्यता का कारवाँ दोनों की सहायता से निरन्तर चलता रहा।

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

राज्य का जन्म और नारी की राजनीतिक भूमिका

अतिरिक्त उत्पादन तथा राज्य का जन्म :

मानव समाज अतिरिक्त उत्पादन के युग में प्रवेश तो कर चुका था किन्तु अतिरिक्त उत्पादन इतना नहीं हो पाता था कि जिससे एक के श्रम से उत्पन्न अतिरिक्त उत्पाद श्रम से मुक्त किसी अन्य व्यक्ति का पूरी तरह भरण–पोषण कर सके। बहुत से व्यक्तियों के सामूहिक श्रम से अवश्य एक व्यक्ति का भरण–पोषण हो सकता था। स्वेच्छा से अकारण कोई अपना उत्पाद दूसरे को मुफ्त में नहीं देता। बाध्यकारी दण्ड प्राविधिकी इतनी विकसित नहीं हो पायी थी जिसके सहारे थोड़े से व्यक्ति बहुतों पर नियंत्रण स्थापित कर उनके अतिरिक्त उत्पाद का अपने लाभ के लिये दोहन कर सकें। यह स्थिति अधिक दिन तक नहीं बनी रह सकी। उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होती गयी। इसकी पुष्टि दक्ष–विश्वकर्मा आख्यान से होती है।

उत्पादन में दक्षता एवं हस्तशिल्प का विकास :

ब्रह्मा के हाथ के एक अंगूठे से दक्ष और दूसरे से दक्ष पत्नी का जन्म हुआ। ब्रम्हा के वक्ष से धर्म उत्पन्न हुआ। धर्म और दक्ष पुत्री के संयोग से प्रभास उत्पन्न हुआ और प्रभास के पुत्र विश्वकर्मा, देवताओं के शिल्पी हुये।[(1)] इस आख्यान से स्पष्ट है कि हाथ और अंगूठे की सहायता से कार्य करते–करते मानव जाति ने कार्यदक्षता (दक्ष प्रजापति) प्राप्त कर ली। उत्पादन के अधिक अच्छे और सुविधाजनक उपकरण बनाये जाने लगे। दक्षता प्राप्त करने में नारी तथा पुरुष दोनों का (दक्ष तथा दक्ष पत्नी) समान

---

(1) महा. आदि 66.10, 11, 18, 28, 31

सहयोग रहा। प्रत्येक कार्यप्रणाली के सुचारु रूप से चलने के लिये उसकी एक आचार संहिता, कार्य अनुशासन होता है। जिसके अभाव में वह प्रणाली चल नहीं सकती। इसी आचार संहिता, कार्य अनुशासन को धर्म कहा गया, जो समाज (ब्रह्मा) से ही लम्बे अनुभव द्वारा विकसित हुआ। इसी आचार संहिता और अनुशासन तथा दक्षता के सहयोग से उत्पादकों के बीच से विशेष प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति सामने आये (प्रभास = प्रकाशवान)। इन्हीं प्रतिभाओं से विभिन्न शिल्पों में निष्णात शिल्पी (विश्वकर्मा) जन्मे।

इस व्यवस्था ने उत्पादन की गति बढ़ा दी। अतिरिक्त उत्पाद में आशातीत वृद्धि हुई।

अतिरिक्त उत्पाद के भण्डारण, रक्षण तथा वितरण जनित समस्यायें तथा राज्य का जन्म :

जब अतिरिक्त उत्पाद में वृद्धि हुयी तब स्वाभाविक था कि उसके भण्डारण, सुरक्षा तथा वितरण का भी प्रबन्ध किया जाये। सक्षम और दक्ष व्यक्ति (श्रमिक, शिल्पी आदि) तो अपने–अपने धन्धे में लगे रहते थे, उनके पास अवकाश था ही नहीं। अतएव अतिरिक्त उत्पाद के प्रबन्धन का कार्य वृद्ध, अनुभवी साथ ही शारीरिक रूप से अपेक्षाकृत अक्षम व्यक्तियों को सौंपा गया।

जो उत्पादन क्रिया में अपेक्षाकृत अक्षम या कम कुशल थे उन्हें प्रबन्धन का जटिलतर कार्य सौंपा गया। उनसे निष्पक्षता की आशा की गयी। शीघ्र ही इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे। अन्यायपूर्ण वितरण प्रारम्भ हुआ, एक परजीवी वर्ग अस्तित्व में आया। स्वभावतः उत्पादक वर्ग द्वारा इसका विरोध हुआ। विरोध को कुचलने के लिये एक दण्ड शक्ति पर आधारित, बाध्यकारी संगठन खड़ा किया गया। आगे चलकर यही संगठन राज्य कहलाने लगा।[2] समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित हो गया, एक

(2) भारत अश्वघोष, नई दिल्ली, मार्च–अप्रैल 1998, पृ. 42

शोषक तथा दूसरा शोषित।

राज्य का अस्थाई उद्भव :

अतिरिक्त उत्पाद की छीना–झपटी प्रारम्भ होने के तत्काल बाद ही राजसत्ता स्थाई रूप से स्थापित नहीं हो गयी। राजसत्ता बनी और शीघ्र ही विघटित भी हो गयी। कई प्रयासों के बाद ही राजसत्ता स्थाई रूप में अस्तित्व में आ सकी। इसकी पुष्टि इस पौराणिक आख्यान से होती है।

ब्रह्मा द्वारा विरचित नीतिशास्त्र के आधार पर विष्णु ने विरजा को राजा बनाया। उसने राजा बनना अस्वीकार कर दिया। उसके बाद कीर्तिमान को राजपद दिया गया। वह मोक्षमार्गी निकला। उसके बाद कर्दम को राज सत्ता सौंपी गयी। कर्दम तपस्या में ही लीन रहने लगे। राज–काज में रुचि नहीं ली। उनके बाद अनंग राजा बने, जो प्रजा संरक्षण तथा दण्डनीति में निपुण थे। तत्पश्चात् अतिबल को सत्ता सौंपी गई। वह इन्द्रिय लोलुप निकला अतएव असफल हुआ। इसके पश्चात वेन राजा बनाया गया। वेन राग–द्वेष के वशीभूत होकर प्रजा पर अत्याचार करने लगा। ऋषियों तथा ब्राम्हणों ने मंत्रपूत कुशों से उसका वध कर दिया। वेन के शव का मंथन किया गया। उसकी भुजाओं से पृथु का जन्म हुआ। पृथु को राजा बनाया गया। पृथु ही प्रथम राजा बने।[3]

इस पुराकथा से स्पष्ट होता है कि राज्य स्थापना के प्रथम छः प्रयास असफल रहे सातवें प्रयास में ही सफलता मिली। वर्ग तो अस्तित्व में आ गये थे किन्तु शासन करने–राजत्व की मानसिकता अभी विकसित नहीं हुयी थी। (वि=अभाव, नकारात्मक र+ज=रजोगुण, राजत्व की मनोदशा–यही विरजा का अर्थ है) राज्य स्वाभाविक रूप से प्रजा के स्वतन्त्र या मुक्त आचरण पर करणीय तथा अकरणीय मापदण्ड के अनुसार

---

(3) महा. शान्ति. 59, 88–94, 98, 116, 117

अनुशासन थोपता है। अभी लोग इस प्रकार के बन्धन स्वीकारने के अभ्यस्त नहीं हुये थे। यही अर्थ है कीर्तिमान के मोक्षमार्गी (स्वतंत्र जीवन यापन) होने का। तपस्या का अर्थ पूजा–पाठ या आराधना नहीं है। तपस्या कठिन श्रम का प्रतीक है प्रत्येक प्रकार की उत्पादन या ज्ञानार्जन की क्रिया में पूर्ण क्षमता या लगन से जुटना ही तपस्या है। वर्गहीन समाज में कोई परजीवी नहीं था, सभी श्रम करते थे, तपस्या में लीन रहते थे। कर्दम की भी राज्य पूर्व व्यवस्था की यही मानसिकता थी। वह मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध था। अनंग प्रजा संरक्षण तथा दण्डनीति के कुशल प्रयोग को दो विपरीत दिशाओं की ओर चलने वाले घोड़ों पर सवार था जो असम्भव कार्य था। प्रजा के पूर्ण संरक्षण की स्थिति में शोषण के लिये कोई स्थान नहीं होता। बिना शोषण के राजसत्ता अस्तित्वहीन होती है। अनंग की असफलता का कारण स्पष्ट था। अतिबल इन्द्रिय लोलुप था। उसने सत्ता का अपने हाथों में केन्द्रीकरण किया, राजसत्ता का व्यक्तिगत स्वार्थ में दुरुपयोग किया। वह भूल गया कि शोषण की भी कोई सीमा होती हैं इस सीमा का अतिक्रमण विद्रोह को जन्म देता है। अतिबल को भी असफलता का स्वाद चखना पड़ा।

व्यक्तिगत परिवार तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ ही राग–द्वेष का जन्म होता है अपने के प्रति राग (लगाव) होता है और पराये के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। नया राजा वेन इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता था। वह विस्मरण कर बैठा कि राज्य व्यक्तिगत संस्था न होकर वर्गीय संस्था है शासक वर्ग अपने वर्गीय हित के विरुद्ध कार्य करने वाले राजा को अधिक दिन तक सहन नहीं करता। यही हाल वेन का भी हुआ। वेन के बाद राज्य विहीन समाज (वेन का शव) में से खोज कर शोषक हितों के सर्वथा अनुकूल व्यक्ति पृथु को राजा बनाया गया, जो सफल प्रमाणित हुआ।

राज्य का प्रारम्भिक अस्थायित्व केवल भारत की ही परिघटना नहीं है। प्राचीन यूनान में भी ऐसा ही देखने को मिलता है। होमर के प्रसिद्ध महाकाव्य 'ओडसी' का

नायक ओडेसियस ट्राय युद्ध में जाने और वहाँ से लौटने के समय अन्तराल में लगभग बीस वर्ष तक अपने राज्य से अनुपस्थित रहा। इस लम्बे अन्तराल में उसके राज्य में उसकी अनुपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। स्थिति सामान्य बनी रही, दूसरा राजा चुनने का प्रश्न ही नहीं उठा।[4] अपने प्रारम्भिक दिनों में राजसत्ता कितनी महत्वहीन तथा अनावश्यक समझी जाती थी। बाद में धीरे–धीरे ही यह महत्वपूर्ण और स्थाई बनी।

जन से जनराज्य की ओर :

राजसत्ता का पहला आघात जन की आन्तरिक एकता तथा समानता को झेलना पड़ा। नाना प्रकार के शिल्प–धन्धों के उदय ने विशेषीकरण तथा श्रम विभाजन को प्रोत्साहित किया। ये दोनों व्यक्तिगत रुचि, कुशलता तथा क्षमता पर आधारित थे, समाज की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। प्रारम्भ में वितरण आवश्यकतानुसार होता था किन्तु धीरे–धीरे स्थिति बदलने लगीं। जन व्यवस्था में प्रतिरक्षा के लिये कोई अलग संगठन नहीं था, स्वप्रेरित जन स्वतः शस्त्र उठा लेता था। इस कार्य के लिये अलग से योद्धाओं को कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता था। खतरा टल जाने पर योद्धा भी पुनः उत्पादक कार्यों में लग जाते थे। नये आयुधों के आविष्कार तथा विकसित प्रविधिकी ने एक स्वतंत्र सैनिक तंत्र गठित करने को उत्प्रेरित किया। इसके सदस्य उत्पादन कार्य से मुक्त रहते थे।

पुरानी परम्पराओं से प्रेरित नेतृत्व गण योद्धाओं को कुछ भी आवंटित नहीं करता था। स्वाभाविक रूप से उनमें असन्तोष उत्पन्न हुआ। उन्होंने बलपूर्वक अपना भाग लेने का प्रयास किया। रुद्र द्वारा यज्ञ पर प्रहार करने का आख्यान उपरोक्त कथन की पुष्टि करता है।

सतयुग बीत जाने के बाद देवताओं ने यज्ञ की कल्पना की। उस समय देवता

---

(4) होमर : ओडेस्सी महाकाव्य

भगवान रुद्र को यथार्थ रूप से नहीं जानते थे, इससे उन्होंने भगवान रुद्र के लिये यज्ञ भाग की कल्पना नहीं की। रुद्र ने देवताओं के दमन के लिये लोक तथा नर यज्ञ से धनुष का निर्माण किया। रुद्र ने वाण से यज्ञ पर प्रहार किया। यज्ञ मृग का रूप धारण कर देवताओं समेत भाग निकला। रुद्र ने धनुष की कोटि से उन्हें भागने से रोक दिया। देवताओं द्वारा प्रेरित वाणी ने शिव के घनुष की प्रत्यंचा काट दी। देवों ने भी रुद्र का भाग नियत कर दिया।[5]

रुद्र सैनिकतंत्र के प्रतीक हैं। प्रारम्भिक दिनों में उत्पादनेत्तर कार्यों को महत्व नहीं दिया जाता था और प्रतिरक्षा जैसे कार्यों के लिये उत्पादन का कोई भाग (यज्ञ भाग) अलग से नहीं दिया जाता था। स्वभावतः सैनिकों (लोक तथा नर यज्ञ) में असन्तोष उत्पन्न हुआ। यही असन्तोष धनुष था। बाद में योद्धाओं को समझा–बुझाकर शान्त किया गया। (वाणी द्वारा प्रत्यंचा काटना) और सैनिक कार्यों के लिये अतिरिक्त उत्पाद का एक अंश निर्धारित कर दिया गया। योद्धा वर्ग में स्त्री और पुरुष दोनों ही सम्मिलित थे। स्त्रियाँ भी युद्ध में भाग लेती थीं। ताटका जिसने दो जनपद उजाड़ दिये थे, सिंहिंका, लंकिनी आदि ऐसी ही महिलायें थीं।[6] सैनिक कार्यों को महत्व दिलाने तथा प्रतिरक्षा पर व्यय स्वीकृत कराने में महिलाओं ने (वाणी) महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दण्ड शक्ति को वैधानिक स्वीकृति मिलते ही राज्य ने स्थायित्व ग्रहण कर लिया। जन स्वतः ही जनराज्य में रूपान्तरित हो गया।

अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि असुरों के आकाशचारी तीन पुरों (त्रिपुर) को नष्ट करने के उपलक्ष्य में यज्ञ पशु को रुद्र का भाग नियत कर दिया।[7] चलने–फिरने

---

(5) महा. सौप्तिक 18.1–6, 13, 17–20, 23

(6) रामा. 1.24.18, 29, 32;
रामा. 5.191–197
रामा. 5.3, 20, 30, 41

(7) महा. द्रोण. 202.64, 66, 69, 70

वाले घुमन्तू आक्रमणकारी शत्रुओं के विरुद्ध शस्त्र उठाने वाले योद्धा वर्ग को अतिरिक्त उत्पाद का एक निश्चित भाग (यज्ञ पशु) दिया जाने लगा। अभी भी योद्धा वर्ग को आवश्यक न्यायपूर्ण भाग ही मिलता था। उसे विशिष्टता प्राप्त नहीं हुयी थी। किन्तु शीघ्र ही वह स्थिति आने वाली थी जिसमें दण्ड या सैनिक शक्ति को विशिष्ट तथा अन्यों से उच्च पद प्राप्त हो गया।

उल्लेख मिलता है कि वैतरणी नदी के तट पर सम्पन्न हुये यज्ञों के यज्ञ पशु को रुद्र ने यह कहकर "यह मेरा भाग है" ग्रहण कर लिया। देवताओं ने कल्याणमय वचनों द्वारा उनका स्तवन कर उन्हें तृप्त किया तथा विशेष रूप से सम्मानित किया। इसी के साथ उन्होंने रुद्र के भय से उन के लिये शीघ्र ही अन्य भागों की अपेक्षा उत्तम एवं सनातन भाग देने का संकल्प किया।[8]

ऊपर के आख्यानों का अन्तर बदली हुयी परिस्थितियों के अन्तर को प्रतिबिम्बित करता है। पहले सैनिकों को अपना उचित भाग दिलाने में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। बाद में सैनिकों को उचित भाग से भी अधिक भाग बिना बल प्रयोग के ही प्राप्त हो गया। मात्र धमकी ही काम दे गयी। दृष्टव्य है कि इस अन्यायपूर्ण वितरण में महिलाओं का न कोई हाथ था और न उनकी सहमति।

परिव्राजक राज्यों में संघर्ष :

जन विघटित होकर जन राज्य बन गये। पशु पालन युग में ये जन राज्य एक स्थान पर स्थाई रूप से निवास नहीं करते थे। चारे और जलाशयों की खोज में समय–समय पर स्थान परिवर्तन करते रहते थे। इन अभियानों के दौरान भिन्न–भिन्न जन राज्यों में संघर्ष हो जाना स्वाभाविक था। यादवों के जन राज्य पर शाल्व के

---

(8) महा. वन. 114.4–11

इच्छानुसार चलने–फिरने वाले सौभ विमान (परिव्राजक जन राज्य) का आक्रमण ऐसी ही घटना का उदाहरण था।[9] सौभ विमान वास्तव में परिव्राजक युग का जन राज्य ही था। यादवों के क्षेत्र को तो आज तक ब्रज भूमि (मथुरा–वृन्दावन क्षेत्र) कहा जाता है। यादव भी पशुपालक थे।

युद्ध बन्दियों की हत्या :

अतिरिक्त उत्पादन पूर्व की स्थिति में ऐसे संघर्षों में पकड़े गये युद्ध बन्दियों की हत्या कर देने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं था। बन्दियों का भरण पोषण सम्भव ही नहीं था। बन्दियों को अपना आहार स्वयं जुटाने के लिये खुला छोड़ना खतरे को आमंत्रण देना था। वे कभी भी भाग सकते थे। उनका वध करना ही एकमात्र विकल्प था। नरमेध युद्ध बन्दियों की हत्या का कर्मकाण्डी रूप है। इस की विस्तृत विवेचना डांगे की पुस्तक में मिलती है।[10] अतएव पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है।

दास प्रथा का उदय :

अतिरिक्त उत्पादन युग के सूत्रपात ने स्थिति उलट दी। अब बन्दियों को उत्पादन कार्य में लगाया जा सकता था और उनके अतिरिक्त उत्पादन का विजयी पक्ष सरलता से दोहन कर सकता था। नरमेध अनावश्यक हो गया था। "कालातीत जीवन–यापन की पद्धति धर्म में अपनी सरंक्षण स्थली खोज लेती है।" युद्धबन्दी हत्या प्रथा के साथ भी ऐसा हुआ। नरमेध ने कर्मकाण्डी धार्मिक रूप ग्रहण कर लिया। बन्दियों की उत्पादन उपयोगिता को देखकर नरमेध में नर बलि का विरोध भी होने लगा। विश्वामित्र के द्वारा

---

(9) महा. वन. 14.6; महा. वन. 22.40

(10) डांगे, एस. ए. : इण्डिया, फ्रॉम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टुस्लेवरी

अम्बरीय के नरमेध में शुनः शेप की रक्षा करने का प्रसंग ऐसा ही उदाहरण है।[11]

कद्रू के हाथों विनता की पराजय, विजयी जन द्वारा पराजित जन को दासता के बन्धन में जकड़ने का एक स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। कद्रू और विनिता दो बहनें थीं। कद्रू के पुत्र नाग थे। इसी से वह नागमाता कही जाती है। विनिता के पुत्र सुपर्ण (पक्षीगण) हुये। एक दिन दोनों बहिनें भ्रमण को जा रही थीं। संध्या हो गयी। संध्या के धुंधलके में उन्होंने दूर उच्चैश्रवा नामक घोड़ा देखा। धुंधलका और दूरी के कारण घोड़े का रंग साफ नहीं दिखाई पड़ता था। कद्रू ने कहा कि घोड़े की पूंछ काले रंग की है। विनिता ने प्रतिवाद करते हुए पूंछ का रंग श्वेत बतलाया। विवाद बढ़ गया। अन्त में निश्चय हुआ कि प्रातःकाल आकर घोड़े की पूंछ को देखा जाये और पराजित पक्ष विजयी पक्ष का दासत्व स्वीकार करे।

कद्रू जानती थी कि घोड़े की पूंछ श्वेत रंग की है। उसने शर्त जीतने के लिये अपने पुत्र नागों से पूंछ में लिपट जाने को कहा जिससे पूंछ काले रंग की दिखाई देने लगे। अधिसंख्य नागों ने इस धोखाधड़ी में सहयोग देने में असमर्थता प्रकट की। कद्रू ने उन्हें जनमेजय के नाग यज्ञ में जलकर नष्ट हो जाने का शाप दे दिया। शाप के भय से कुछ नाग उच्चैश्रवा घोड़े की पूंछ से लिपट गये। नागों के लिपटे होने के कारण प्रातः कद्रू और विनीता को पूंछ काली दिखायी दी। विनीता शर्त हार गयी और उसे पुत्रों समेत कद्रू और नागों का दासत्व स्वीकार करना पड़ा।[12]

इस पुराकथा में कद्रू और विनिता दोनों मातृसत्तात्मक टोटमीय जन राज्यों–नाग और सुपर्ण नामक टोटमीय जन राज्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। दोनों ही राज्यों के पारस्परिक संघर्ष में ऐन–केन–प्रकारेण विजय प्राप्त करना चाहते हैं। विजयी पक्ष

---

(11) रामा. बाल. 62.26

(12) महा. आदि. 20.4, 6–8, 10; वही. 23.1–3; वही 53.21–26; वही. 58.78, 24

पराजित पक्ष को दास बना लेता है।

इस कथा से एक विडम्बनापूर्ण तथ्य सामने आता है। जिन महिलाओं ने कभी न्यायपूर्ण वितरण का पक्ष लिया था तथा हर प्रकार के श्रम को समान प्रतिष्ठा दिलाई थी।[13] उन्होंने ही बदली परिस्थितियों में दास प्रथा को दृढ़ता करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शासक वर्ग का दो भागों में विभाजन और उनमें संघर्ष :

धीरे–धीरे राजतंत्र का सांगठनिक ढांचा जटिल से जटिलतर होता जा रहा था। शासक वर्ग स्पष्टतः दो भागों में विभक्त हो गया। समाज के ज्ञान–विज्ञान का अधिष्ठाता तथा समस्त जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले बौद्धिक वर्ग जो ब्राह्मण कहलाता था, प्रथम भाग था। दूसरा भाग राज्य के प्रशासनिक पदाधिकारियों का था। जिन्हें राजन्य कहा जाता था, बाद में यही क्षत्रिय नाम से प्रसिद्ध हुये। समय के साथ शासक वर्ग के इन दोनों अंगों में सत्ता की होड़ तथा प्रतिष्ठा और महत्व को लेकर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस तथ्य की ओर देवयानी–शर्मिष्ठा विवाद की पुराकथा स्पष्ट रूप से संकेत करती है।

दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री का नाम देवयानी था और दैत्यराज बृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। दोनों सहेलियां तथा समवयस्का थीं। एक दिन सहेलियों के साथ वे दोनों वन विहार को निकली। वन में एक सरोवर को देखकर वे सभी अपने सभी वस्त्र उतार कर स्नान करने के लिये सरोवर में उतर गयी। जब वे स्नान कर रहीं थीं उसी समय उन्हें किसी के आने की आहट सुनाई दी। वे सभी शीघ्रता पूर्वक बाहर निकलीं और

---

(13) सतयुग बीतने के बाद देवों द्वारा यज्ञ की कल्पना का आख्यान, वाणी की भूमिका–पीछे संदर्भ (5)

अपने–अपने वस्त्र पहने लगीं। हड़बड़ाहट में शर्मिष्ठा ने देवयानी के वस्त्र पहन लिये। देवयानी ने शर्मिष्ठा के इस हड़बड़ाहटपूर्ण व्यवहार पर जली–कटी बातें सुनाकर भर्त्सना की। शर्मिष्ठा को भी क्रोध आ गया। उसने देवयानी को अपने पिता की स्तुति करने वाले याचक की पुत्री कहकर अपमानित किया।

घर आकर देवयानी ने अपने पिता दैत्य गुरु शुक्राचार्य से पूछा कि क्या वह वास्तव में वृषपर्वा के याचक हैं ? शुक्राचार्य ने उसे सांत्वना देते हुये कहा, "मैं किसी की स्तुति नहीं करता, सब मेरी ही स्तुति करते हैं। अचिन्त्य और निर्द्वन्द्व ब्रह्म ही मेरा बल है।" साथ ही यह भी कहा कि इसका प्रमाण तुम्हें प्रातःकाल ही देखने को मिल जायेगा। रात्रि में ही उन्होंने दैत्य राज्य छोड़ने की घोषणा कर दी। पता चलते ही दैत्यराज बृषपर्वा दौड़ता हुआ शुक्राचार्य के पास आया और उन्हें दैत्य राज्य न छोड़ने की प्रार्थना करने लगा, "दैत्य राज्य का अस्तित्व आपके विज्ञान और विद्या के अमोघ बल पर ही निर्भर है। उसके अभाव में दैत्यों को समुद्र में समा जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहेगा। कृपया आप न जाइये।"

देवयानी अपने पिता सहित इस शर्त पर रुकने के लिये तैयार हुयी कि देवयानी के विवाह के उपरान्त शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर उसके साथ उसकी ससुराल जाये। अपने जाति भाइयों की रक्षा करने के लिये विवश हो शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनने की अपमानजनक शर्त स्वीकारनी पड़ी।[14]

इस पुराकथा में शुक्राचार्य–देवयानी राज्य के बौद्धिक अंग और वृषपर्वा–शर्मिष्ठा राजन्य अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। बौद्धिक वर्ग की श्रेष्ठता और प्रभुत्व के सामने राजन्य वर्ग को नतमस्तक होना पड़ा, दासत्व स्वीकार करना पड़ा। राजसत्ता के इस

(14) महा. आदि. 78.4–13, 34, 37, 38
महा. आदि. 80.5, 24, 26

आन्तरिक संघर्ष में भी नारियों की ही भूमिका महत्वपूर्ण रही। शुक्राचार्य तथा बृषपर्वा तो निमित्त मात्र हैं। मुख्य भूमिका तो देवयानी और शर्मिष्ठा, दोनों नारियों की ही है।

ऐसा नहीं है कि शासक वर्ग के इस सत्ता संघर्ष में सदैव नारियों की ही भूमिका रही हो, पुरुष निमित्त ही बने रहे हों। इन्द्र रूप में नहुष–सप्तऋषि विवाद प्रकरण में पुरुषों की ही मुख्य भूमिका दिखाई देती है।

ब्रह्म हत्या (व्रत्रासुर बध) से बचने के लिये इन्द्र छिप गये। इन्द्र पद रिक्त हो गया। राजा नहुष को इन्द्र पद पर प्रतिष्ठित किया गया। नये इन्द्र (नहुष) ने इन्द्राणी पर अपना अधिकार करना चाहा। उसने इन्द्राणी को अपनी सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया। इन्द्राणी ने शर्त रखी कि यदि नहुष अपनी पालकी में सप्तऋषियों को वाहन बना कर जोतें और उसमें बैठकर पधारे तो इन्द्राणी आत्मसमर्पण कर सकती हैं। नहुष ने सप्तऋषियों को वाहन बनाया और पालकी में बैठकर इन्द्राणी के महल की ओर चला। नहुष को ढोते हुये मार्ग में सप्तऋषियों ने नहुष से प्रश्न किया, "ब्रह्मकल्प से चले आ रहे गायों के प्रोक्षण से सम्बन्धित मंत्रों को प्रमाणिक मानते हैं या नहीं ? नहुष ने उन मंत्रों को प्रमाणिक मानने से मना कर दिया। ऋषि उन्हें प्रमाणिक मानने का समर्थन करने लगे। विवाद बढ़ गया। क्रोधित होकर नहुष ने अगस्त ऋषि के मस्तक पर पद प्रहार किया। पद प्रहार से आहत अगस्त ऋषि ने शाप देते हुये नहुष से कहा, "प्राचीन ऋषियों ने जिसका अनुष्ठान किया है उस ब्रह्मकल्प से चले आ रहे मत को अप्रमाणिक मानने और ऋषियों को वाहन बनाने के कारण तेरे सभी पुण्य क्षीण हो गये हैं तू स्वर्ग से भ्रष्ट होकर अजगर बनकर पृथ्वी पर गिरे।" नहुष का पतन हो गया।[15]

इस प्रकरण में इन्द्राणी राजसत्ता के वैभव, गरिमा और प्रभुत्व की प्रतीक है। नहुष राजन्य वर्ग का प्रतिनिधि है। वह राज्य के प्रभुत्व का उपयोग अपने वर्ग के हित में

(15) महा. उद्योग. 10.46; वही. 11.9, 19; वही. 13.4; वही. 15.13, 22 वही. 17.9–18

करना चाहता था। लेकिन ऐसा तभी सम्भव था जब वह सत्ता के प्रथम भागीदार बौद्धिक वर्ग को अपने आधीन कर ले। उसने ऐसा करने का प्रयास किया (ऋषियों को वाहन बना कर)। ऋषिगण पहले से चली आ रही बौद्धिक प्रभुता के समर्थक थे। उन्होंने राजन्यों की प्रभुता अस्वीकार कर दी और उन्हें सत्ताच्युत कर दिया। साथ ही जाति बहिष्कृत भी कर दिया। जिन्हें भागकर अन्य जनों में शरण लेनी पड़ी, अजगर होना पड़ा। यहाँ सत्ता संघर्ष में नारी (इन्द्राणी) निमित्त है और पुरुष (नहुष तथा सप्तऋषि) मुख्य भूमिका में हैं।

इन दोनों प्रकरणों (देवयानी—शर्मिष्ठा एवं नहुष—सप्तऋषि) में राज्य के वैभव, प्रतिष्ठा, मान सम्मान पर अधिपत्य को लेकर ही बौद्धिक तथा राजन्य वर्ग में संघर्ष हुआ था। किन्तु अपने अनुभवों से राजन्यों ने समझ लिया कि जब तक उत्पादन के साधनों पर बौद्धिक वर्ग का अधिपत्य है तब तक राजन्य राजसत्ता पर भी अपना एकाधिकार स्थापित नहीं कर सकते। निम्नलिखित प्रकरणों में राजन्यों के ऐसे ही प्रयासों का उल्लेख मिलता है।

अतिरिक्त उत्पाद पर आधिपत्य हेतु शासक वर्ग के घटकों में संघर्ष—बौद्धिक वर्ग की विजय :

एक बार राजा विश्वामित्र (ये ऋषि बाद में बने, पहले कान्यकुब्ज के राजा थे) आखेट करने गये। आखेट के बाद सेना सहित राजा विश्वामित्र महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जा पहुँचे। राजा ने वशिष्ठ के आश्रम में उनकी नन्दनी नामक कामधेनु गाय देखी। महर्षि वशिष्ठ ने राजा विश्वामित्र तथा उनकी सेना का भव्य स्वागत किया। स्वागत के लिये जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ी वह सब उन्हें कामधेनु से प्राप्त हुयी। ऐसी अनुपम गाय को देखकर राजा का संयम डोल गया। उन्होंने वशिष्ठ जी से एक अरब गायों या सम्पूर्ण राज्य के बदले नन्दिनी लेनी चाही। वशिष्ठ जी ने नन्दिनी को देने से मना कर

दिया। विश्वामित्र ने बल पूर्वक नन्दिनी का अपहरण करने का प्रयास किया। क्रोधोन्मत नन्दिनी के शरीर के विभिन्न अंगों से बहुत सी जनजातियों के अपार योद्धा उत्पन्न हो गये। उन योद्धाओं ने विश्वामित्र की विशालसेना को मार कर भगा दिया। विश्वामित्र को ब्रह्मबल की श्रेष्ठता स्वीकारनी पड़ी।[16]

यह पुराकथा पशुपालन युग से सम्बन्धित है। इस युग में पशुपालन ही आर्थिक जीवन की रीढ़ था, उत्पादन का प्रमुख साधन था। इस प्रमुख साधन पर बौद्धिक वर्ग (वशिष्ठ) का आधिपत्य था। राजन्य वर्ग (विश्वामित्र) ने इसे अपने अधिकार में लेने का बलपूर्वक प्रयास किया। जिसमें राजन्य वर्ग असफल रहा। उसे बौद्धिक वर्ग की श्रेष्ठता स्वीकारनी पड़ी। इस सम्पूर्ण अभियान में नारी की कोई भूमिका नहीं हैं। इस प्रयास के परिणामस्वरूप वर्गीय सन्तुलन में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ, यथा स्थिति बनी रही।

युग बदला, मानव ने पशुपालन युग की सीमा को लांघा और पशुशक्ति आधारित कृषि युग में प्रवेश किया। पशुपालन के स्थान पर अब कृषि आर्थिक जीवन का प्रमुख साधन हो गयी। पिछली पराजय का प्रतिशोध लेने के लिये बदली परिस्थितियों में राजन्य वर्ग ने एक और प्रयास किया।

एक बार महर्षि जमदग्नि के आश्रम में सेना सहित सहस्त्रबाहु अर्जुन ने प्रवेश किया। इस बार राजा ने महर्षि से गाय के स्थान पर होमधेनु के बछड़े की मांग की। न देने पर, राजा ने ऋषि की हत्या कर दी और बछड़े का अपहरण कर लिया। महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम उस समय आश्रम के बाहर थे। लौटने पर उन्हें पिता की हत्या का पता चला। क्रोध में भरकर उन्होंने सहस्त्रबाहु अर्जुन पर आक्रमण किया और पुत्रों सहित उसका बध कर होमधेनु का बछड़ा छुड़ा लिया। इतना ही नहीं उन्होंने इक्कीस

---

(16) महा. आदि. 174.9—12, 15—18, 22, 36—38, 43, 45

बार इस पृथ्वी को क्षत्रियशून्य कर दिया।[17]

यहाँ पर होमधेनु का बछड़ा पशुशक्ति आधारित कृषि का प्रतीक है। उत्पादन के इसी प्रमुख आधार पर राजन्यों ने अधिकार करने का एक और असफल प्रयास किया। इस प्रयास में तो क्षत्रियों का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया। किन्तु वे अपना अस्तित्व बचाये रखने में अन्ततोगत्वा सफल रहे।

दोनों पक्षों में संघर्ष चलता रहा। इक्ष्वाकुवंशी राजा मित्र सह (बाद में कल्माष पाद) तथा वशिष्ठ पुत्र शक्ति का विवाद इसी ओर संकेत करता है।

एक बार राजा मित्र सह एक संकरे मार्ग से गुजर रहे थे। मार्ग इतना संकीर्ण था कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं आ जा सकते थे। संयोग से दूसरी ओर से वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ऋषि आ रहे थे। राजा ने शक्ति को लौटने और मार्ग देने का आदेश दिया। शक्ति ने ब्राह्मण को श्रेष्ठ और उच्च बताकर पीछे लौटकर राजा को मार्ग देने से मना कर दिया, और राजा को पीछे लौटने को कहा। विवाद बढ़ गया और क्रोध में राजा ने शक्ति पर कोड़े से प्रहार किया। अपमानित शक्ति ने राजा को नरभक्षी राक्षस होने का शाप दे दिया। राजा नरभक्षी राक्षस हो गये। नरभक्षी होते ही उन्होंने शक्ति को उनके सभी भाइयों सहित खा डाला।[18]

इस आख्यान में सत्ता–संघर्ष अनिर्णीत रहा। राजा को जाति बहिष्कृत होकर वन्य नरभक्षी जातियों में शरण लेनी पड़ी और ब्राह्मणों को भी जीवन से हाथ धोना पड़ा। सत्ता संघर्ष में धीरे–धीरे राजन्य वर्ग अपने शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी ब्राह्मण या बौद्धिक वर्ग के समकक्ष होता जा रहा था। उत्साहित क्षत्रिय निरन्तर प्रयत्नशील रहे और वह भी समय आ गया जब राजन्यों ने ब्राह्मणों के हाथ से सैनिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में बढ़त प्राप्त

---

(17) महा. वन. 116.19–28; महा. वन. 118.7, 9, 14

(18) महा. आदि. 175.5–9, 11, 14, 25, 40, 42

कर ली। ब्राह्मणों को विवश होकर इस क्षेत्र में क्षत्रियों के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करनी पड़ी। सीता स्वयंवर के सन्दर्भ में राम–परशुराम विवाद का आख्यान इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

सत्ता संघर्ष में क्षत्रियों की विजय :

मिथला के राजा जनक की एक पुत्री थी। उसका नाम सीता था। राजा ने घोषणां की कि जो भी उनके यहाँ सुरक्षित शिव जी के धनुष की प्रत्यंचा को चढ़ा देगा, उसी से सीता का विवाह होगा। राम ने उस घनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई। प्रत्यंचा कान तक खींचते ही धनुष टूट गया। परशुराम ने जब राम द्वारा शिव धनुष तोड़ने का समाचार सुना तो वे अत्यन्त क्रोधित हुये। उन्होंने मिथला से लौटते मार्ग में राम को रोका और उनसे अपने घनुष पर बाण चढ़ाने को कहा। राम ने परशुराम का धनुष ले लिया और उस पर बाण चढ़ा दिया। राम ने बाण छोड़ दिया। उस बाण ने परशुराम द्वारा तपस्या से अर्जित पुण्य लोकों को नष्ट कर दिया। परशुराम ने राम की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया।[19]

परशुराम द्वारा अपने धनुष को राम के हाथों में देना और राम द्वारा उसका प्रयोग करना सैनिक सत्ता दण्डशक्ति के हस्तांतरण का प्रतीक है। ब्राह्मण अभी तक राजकीय वैभव तथा सुविधाओं का उपयोग करते रहे थे, राजन्य वर्ग द्वारा उनसे वह छीन ली गयी। परशुराम द्वारा अर्जित लोकों को नष्ट करने का यही रहस्य है।

सत्ता दो रूपों में प्रभावी होती है प्रथम, दण्डशक्ति जो व्यक्तियों के बाह्य आचरण को बलपूर्वक नियन्त्रित करती है और द्वितीय, धर्मतंत्र, यह व्यक्ति के भीतरी विचारों को नियंत्रित करता है। इसके प्रभाव से सामान्य व्यक्ति स्वतः शासक वर्ग के

---

(19) रामा. बाल. 66.26; वही 67.17, वही 76.4, 21, 22
महा. वन. 99.42, 43, 49–53, 61–63, 69, 70

अनुशासन में रहते हैं। धर्म, दण्ड शक्ति के प्रयोग को अनावश्यक बनाने का प्रयास करता है। जब दो प्रकार की शक्तियां एक ही वर्ग के हाथ में रहती हैं तो परस्पर पूरक का काम करती हैं। जब अलग–अलग विरोधी वर्गों के हाथ में होती हैं। तो दोनों में संघर्ष होता है।

राम के युग तक आते–आते राजसत्ता (दण्ड शक्ति) पर राजन्यों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था किन्तु धर्मतंत्र अभी भी ब्राह्मणों के हाथों में ही था। क्षत्रियों ने इस पर भी अधिकार करने की ठान ली और महाभारत काल तक आते–आते वे अपने इस अभियान में भी सफल हो गये। परशुराम–भीष्म संघर्ष की कथा इस हस्तान्तरण की पुष्टि करती है।

धार्मिक क्षेत्र में भी क्षत्रियों की विजय :

परशुराम जी ने अपने शिष्य भीष्म (पहले देवव्रत) को अम्बा नामक राजकुमारी से विवाह करने का आदेश दिया। अपनी पुरानी प्रतिज्ञा को स्मरण रखते हुये भीष्म ने विवाह करने में असमर्थता व्यक्त की। परशुराम जी ने भीष्म को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा और भीष्म को बलपूर्वक विवाह कराने की ठान ली। दोनों युद्ध के लिये रण क्षेत्र में उतरे। भीष्म रथारूढ़ थे, परशुराम जी पैदल थे। भीष्म ने परशुराम जी को एक रथ देकर रथारूढ़ होकर युद्ध में प्रवृत्त होने का आग्रह किया। परशुराम जी ने भीष्म को झिड़कते हुये कहा, "मैं पैदल नहीं हूँ, रथारूढ़ हूँ। तुझे मेरा रथ नहीं दिखाई देता ? पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद घोड़े हैं, वायु सारथि है, वेद मातायें कवच हैं।" युद्ध प्रारम्भ हुआ। भीष्म ने प्रजापति के प्रस्वाप नामक अस्त्र से परशुराम को पराजित कर दिया। परशुराम जी इस अस्त्र से परिचित नहीं थे।[20]

---

(20) महा. उद्योग. 179.1–4, 7; वही. 183.12; वही 185.8

भीष्म रथारुढ़ थे, उनका रथ स्थूल था, सबको दिखाई देता था। अर्थात राजन्य वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व भीष्म करते थे, राजसत्ता पर अधिकार कर चुका था। परशुराम जी भी रथारुढ़ थे किन्तु उनका रथ सूक्ष्म था, बाह्य नहीं था। धर्म तंत्र ही उनका रथ था (वेद घोड़े आदि)। इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह संघर्ष राजसत्ता तथा धर्म सत्ता के बीच श्रेष्ठता का था। ऐसा ही संघर्ष बहुत बाद में यूरोप में राज्य और चर्च के बीच देखा गया था। दोनों संघर्षों में अन्त में राज्य की ही विजय हुयी। इस कथा में भी भीष्म (राजन्य) के हाथों परशुराम जी (ब्राह्मण) को पराजय झेलनी पड़ी थी। इस प्रकार अन्ततोगत्वा दोनों प्रकार की सत्तायें राजतंत्र और धर्मतंत्र राजन्यों के हाथ में चली गयीं। औपनिषदिक ज्ञान (राजन्य वर्ग का दर्शन)[21] की वैदिक धर्म पर विजय हुई।

ब्राह्मण–क्षत्रिय समझौता :

सत्ता संघर्ष में पराजित होने के उपरान्त ब्राह्मणों को अपनी दुर्बल स्थिति का आभास तुरन्त हो गया। उन्हें संघर्ष की निष्फलता स्पष्ट हो गयी। राजन्यों ने भी समझ लिया कि ब्राह्मणों का निरन्तर विरोध उन्हें भी चैन की नींद न सोने देगा। दोनों ने लम्बे संघर्ष से शिक्षा ग्रहण की और आपस में समझौता कर लिया।[22]

राजन्यों द्वारा प्रतिपादित औपनिषदिक ज्ञान ब्राह्मणों ने अंगीकार कर लिया। औपचारिकतावश वेदों का नाम लेते रहे किन्तु वैदिक व्यवस्था को पूरी तरह त्याग दिया। लौकिक ज्ञान के स्थान पर परलौकिक ज्ञान को प्रतिष्ठित कर दिया गया। शारीरिक श्रम को जो मानव चेतना को भौतिक जगत से बांधे रखता है और मानव मन को आदर्शवादी पारलौकिक कल्पना लोक में भटकने से रोकता है, हीन समझा जाने लगा।

---

(21) गीता. 4.1, 2

(22) चट्टोपाध्याय, देवी प्रसाद : लोकायत, पृ. 603

देव चिकित्सक अश्विनी कुमारों को चिकित्सा करने के कारण (श्रम) इन्द्र द्वारा यज्ञ भाग से वंचित कर दिया जाना,[23] ऐसा ही एक उदाहरण है। अंगूठे की पोर के बराबर लम्बे, अत्यन्त दुर्बल बाल्यखिल्य ऋषियों के द्वारा शक्तिशाली, बलसम्पन्न इन्द्र का पराभव[24] स्पष्ट रूप से शारीरिक श्रम के ऊपर आध्यात्मिक बल की श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयास है। लौकिक क्षेत्र में ब्राह्मणों ने राजा को नर रूप में नर देव और ईश्वर का अवतार घोषित कर दिया।[25] राजसभा में ब्राह्मणों को विशेष मान–सम्मान दिया जाने लगा। दोनों ने आपसी समझौता कर लिया। राज्य स्पष्ट रूप से शासक (ब्राह्मण–क्षत्रिय) और शासितों (सामान्य उत्पादक और सेवक, वैश्य–शूद्र) में विभक्त हो गया। राज्य ने स्थाई रूप ग्रहण कर लिया।

इस अध्याय के विवरण प्रमाणित करते हैं कि मानव की उत्पादन क्षमता के साथ–साथ उसकी दक्षता में भी वृद्धि होती गई। नये–नये शिल्प उद्योग विकसित होने लगे। धीरे–धीरे मानव जाति अतिरिक्त उत्पादन के युग में प्रवेश पाने में सफल हो गई। अतिरिक्त उत्पादन के भण्डारण, रक्षण तथा वितरण की समस्यायें उत्पन्न हुईं जिनके निराकरण तथा समाधान के लिये एक विशेष विकसित हुआ। समय के साथ अतिरिक्त उत्पाद के न्यायपूर्ण वितरण में व्यवधान उत्पन्न होने लगे, असंतोष तथा बल प्रयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ। शनैः–शनैः बाध्यकारी दण्डतंत्र अस्तित्व में आया। यही तंत्र कालान्तर में सुगठित राज्य बन गया। इस नई व्यवस्था के अनुकूल एक आचार संहिता भी अस्तित्व में आई, जो आगे चलकर धर्मतंत्र में विकसित हुई। शक्तिशाली वर्ग का दोनों पर वर्चस्व स्थापित हुआ। जन की आन्तरिक एकता नष्ट हो गई। जन के खण्डहरों पर जनराज्य का प्रासाद उठ खड़ा हुआ। सम्पूर्ण पशुपालन युग में जन राज्य परिव्राजक स्थिति में बना

---

(23) महा. वन, 124.9, 11–13, 15; वही. 125.1–3

(24) महा. आदि 31.6–11, 14–23, 32

(25) महा. वन. 185.26, महा. शान्ति. 65.28, 29; वही 68.41–47

रहा। जब कृषि का व्यापक प्रसार हुआ और पशुपालन का स्थान कृषि ने प्रमुख धन्धे के रूप में ले लिया तो जनराज्यों ने भौगोलिक दृष्टि से स्थायित्व ग्रहण कर लिया और जनराज्य, जनपदीय राज्य में रूपान्तरित हो गये। वाणिज्य के विस्तार ने महाजनपदीय राज्यों की नींव डालनी शुरू कर दी और आगे चलकर चक्रवर्ती साम्राज्य अस्तित्व में आये।

अतिरिक्त उत्पादन के युग के पहले युद्धबन्दियों की हत्या करने के अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं था। अतिरिक्त उत्पाद ने उनकी हत्या को व्यर्थ तथा अलाभकारी बना दिया। नर बलि के रूप में यह प्रथा अवश्य कर्मकाण्ड के रूप में जीवित बनी रही। युद्धबन्दियों को दास बनाया जाने लगा। बाद में तो अन्य विधियों से भी दास बनाये जाने लगे। उनका क्रय–विक्रय भी होने लगा। उपभोग के प्रति बढ़ती अनर्गल लिप्सा ने शासक वर्गों में आन्तरिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी। बौद्धिक बल (ब्राह्मण) तथा राज्यसत्ता (राजन्य–क्षत्रिय) में खाँड़ा खटकने लगा। प्रारम्भ में बौद्धिक बल विजयी होता रहा किन्तु समय गुजरने के साथ राज्य सत्ता प्रबल होती गई और अन्त में उसकी पूर्ण विजय हुई। अनुभव से सीखते हुये बौद्धिक बल तथा राज्य सत्ता ने आपस में एक सुविधाजनक समझौता कर लिया। इस सम्पूर्ण घटनाकाल में नारी–पुरुष दोनों की अपनी–अपनी समान भूमिका रही। धीरे–धीरे उत्पादक धंधों के साथ–साथ उत्पादनेत्तर कार्य भी सामने आने लगे। जो उत्पादक कार्यों से कम महत्वपूर्ण नहीं थे। प्रारम्भ में ऐसे कार्यों जैसे प्रतिरक्षा को आवश्यक महत्व नहीं दिया गया। नारियों ने ही ऐसे कार्यों को सामाजिक उपयोगिता में स्थान दिलाया और उनके लिये आवश्यक धन आवंटित कराया। साथ ही सेना को वितरण कार्य से दूर ही रक्खा। बाद में दण्डशक्ति धारकों ने अपने लिये विशेष धन, प्रतिष्ठा आदि बल पूर्वक हथिया ली, किन्तु इस अन्यायपूर्ण कार्य में नारी की कोई स्वतन्त्र भूमिका नहीं दिखाई देती। सम्भवतः उन्होंने अपने–अपने वर्गों का ही साथ दिया

हो। दृष्टव्य है कि प्रारम्भ में नारियां भी सैनिक दायित्व निभाती थी।

दास प्रथा को सुदृढ़ करने तथा संस्थागत रूप देने में नारी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुरुष की भूमिका लगभग शून्य है। बाद में जब शासक वर्ग दो भागों में विभाजित हुआ। और उनमें सत्ता संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो इसके प्रारम्भिक चरण की बागडोर नारियों ने ही सम्भाली। पुरुषों की भूमिका निमित्त मात्र की ही रही (देवयानी–शर्मिष्ठा विवाद)। धीरे–धीरे स्थिति में परिवर्तन आया और सत्ता संघर्ष में पुरुषों ने निर्णायक भूमिका निभाई और नारियां निमित्त बन गयी। (नहुष– सप्तऋषि विवाद)। बाद में तो नारी की भूमिका बिलकुल अदृश्य ही हो गयी। संघर्ष के अंतिम चरण में अवश्य नारी निमित्त रूप में दिखाई देती है। (अम्बा)। यह नारी की घटती भूमिका का स्पष्ट संकेत हैं।

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

राज्य के उद्भव तथा विकास में नारी की भूमिका

अतिरिक्त उत्पाद के आघात (बम्बांर्डमेण्ट) से जन रूपी परमाणु विखण्डित हो गया। जन के विखण्डन से जो अकल्पनीय, युग परिवर्तनकारी ऊर्जा विकरित हुयी उसने जन की आन्तरिक एकता, स्वतः उपक्रमता एवं सशस्त्र सामूहिक अभियान की प्रेरणा तथा क्षमता को नष्ट कर दिया। साथ ही विखण्डन की एक लम्बी अभिक्रिया श्रृंखला उत्पन्न कर दी जिसके माध्यम से क्रमशः जन से जन राज्य, जनपदीय राज्य, महाजनपदीय राज्य और अन्त में एकीकृत तथा संघात्मक सार्वभौमिक चक्रवती साम्राज्य उद्भूत हुये।

इस प्रकार जन के खण्डहरों पर एक नई, तब तक सर्वथा अज्ञात बाध्यकारी संप्रभु राज्य नामक संस्था का विशाल दुर्ग खड़ा हो गया। ज्यों–ज्यों राज्य का सार्थ आगे बढ़ता गया त्यों–त्यों उसका सांगठनिक ढांचा जटिल से जटिलतर होता चला गया। राजकीय पदों की एक लम्बी और ऊँची पद सोपान व्यवस्था उठ खड़ी हुयी। जिसके शीर्ष पर राज्याध्यक्ष होता था जिसे सामान्यतः राजा कहा जाता था। राजा की स्थिति तथा शक्ति और वैभव के अनुसार राजा को भोज[1], विराट[2], भूपति, नृप, सम्राट[3] आदि नाम भी दिये जाते थे।

मातृसत्ता के स्थान पर पितृ सत्ता की स्थापना के कारक तत्व–

बाड़ी कृषि तथा पशुपालन की प्रारम्भिक अवस्था तक जन राज्य एवं जनपदीय राज्य में मातृ सत्ता एक प्रभावी संस्था के रूप में कार्य करती रही और उसी के अनुरूप

---

(1) महा. शान्ति. 68.54

(2) महा. विराट. 14.4; मैकडोल तथा कीथ; वैदिक इंडेक्स (हिन्दी) पृ. 340

(3) महा. वन. 185.27–29

राज्य में नारी की भूमिका विशेष प्रभावी बनी रही। उत्तरी तथा विशेषकर पश्चिमोत्तर भारत में उपयोगी, दुधारू पशु बहुतायत से मिलते थे। विस्तृत घास के मैदानों में गोचारण की भी सुविधा थी। इससे इस क्षेत्र में बाड़ी कृषि तथा पशुपालन की प्रारम्भिक अवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकी और इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत शीघ्र ही व्यापक पशुपालन एवं पशुशक्ति आधारित विस्तृत कृषि युग आ गया। इसी के साथ मातृ सत्ता और नारी की भूमिका घटने लगी और पुरुष वर्चस्व बढ़ने लगा।

विकसित कृषि के साथ वाणिज्य और व्यापार की गतिविधियाँ भी बढ़ने लगी। बढ़ते वाणिज्य ने वाणिक पथों के निर्माण, उन पर सुरक्षा की समस्यायें उत्पन्न कीं। इसी के साथ महाजनपदीय राज्यों तथा चक्रवर्ती साम्राज्यों का युग प्रारम्भ हुआ। उन्नत पशु पालन तथा पशु शक्ति आधारित विस्तृत कृषि युगीन जनराज्यों तथा जनपदीय राज्यों से लेकर चक्रवर्ती साम्राज्यों तक निरन्तर पुरुष सत्ता सुदृढ़ होती चली गयी। इसका राज्य के सांगठनिक ढांचे पर भी प्रभाव दिखाई दिया। राजकीय पद सोपान के विभिन्न स्तरों पर भी नारी की ह्रासोन्मुखी भूमिका दिखाई पड़ती है।

राज्य में पद सोपान तथा नारी–

राज्य का स्वरूप कैसा ही रहा हो, चाहे राजतंत्रात्मक या गणतंत्रात्मक, राज्य प्रमुख राजा ही कहलाता था। यद्यपि संघात्मक गणराज्यों में संघ मुख्य का, राजा से भिन्न एक अलग पद होता था। यादव संघ के राजा उग्रसेन और संघमुख्य श्री कृष्ण थे।[4] आश्चर्य है कि प्राचीन भारत में राज्याध्यक्ष पर कभी कोई नारी प्रतिष्ठित न हो सकी। मातृ सत्तात्मक राज्यों में भी नहीं। नागों की माता कद्रू थी, उनका आदेश नागों पर बाध्यकारी था। उल्लंघनकर्ता दण्ड का भागीदार होता था, चाहे इसके लिये पितृसत्तात्मक राज्यों

(4) भाग. 10.1.69; महा. शान्ति, 81.25

की सहायता ही क्यों न लेनी पड़े। द्रष्टव्य है कि जिन नागों ने माता के आदेश का उल्लंघन कर उच्चैःश्रवा घोड़े की पूछ से लिपटने से मना किया उन्हें नागमाता ने जनमेजय के नागयज्ञ में जल कर नष्ट होने का शाप दिया था। वे नाग जलकर मरे भी थे।[5] इतने पर भी नागों की रानी कद्रू नहीं थी, वासुकी नाग उनके राजा थे।[6]

कैसी विडम्बना है कि मातृसत्तात्मक राज्यों में भी नारी की इतनी अवहेलना। सम्भवतः इसका कारण यह था कि जिस समय वेदों, उपनिषदों तथा महाकाव्यों को वर्तमान रूप मिला उस समय मातृसत्तात्मक विवरणों पर पितृसत्ता की छाप डालकर उन्हें आद्यतन रूप दे दिया गया। पुराकथाओं की यह स्वाभाविक विशेषता होती है। वे युग के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। इसी से कहा जाता है कि पुरानाम नवम् भवति सः पुराणः अर्थात पुराना होते हुये भी नया होता रहे वही पुराण है। इसकी पुष्टि इला के आख्यान से भी होती है।

इला का जन्म पुत्री के रूप में हुआ था। वही राज्य की उत्तराधिकारी थी। बाद में वह राज्यारूढ़ हुई भी। किन्तु पुरुष मानसिकता नारी को राज्याध्यक्ष के रूप में कैसे स्वीकार कर सकती थी। पुराकथा को तोड़ा–मरोड़ा गया और इला को राजा सुद्युम्न के रूप में पुरुष बना दिया गया। पुरुष रूप में ही उसे राज पद मिला।[7]

यदि कभी संकट काल में राजा को अपना पद त्यागना पड़ा, उस समय भी उसकी पत्नी राजमहिषी राज्याध्यक्ष नहीं बन सकती थी, भले ही किसी बाहरी व्यक्ति को आमंत्रित कर राजा बनाना पड़े। ब्रह्म हत्या के भय से इन्द्र को राज्य त्याग कर अज्ञातवास में छिपकर रहना पड़ा। उनकी अनुपस्थिति में उनकी राजमहिषी महारानी शची को इन्द्रासन पर प्रतिष्ठित नहीं होने दिया गया। इन्द्र पद पर पृथ्वी से बुला कर

---

(5) महा. आदि. 20.6–8
(6) महा. आदि. 37.29
(7) तृतीय अध्याय, संदर्भ संख्या 18 तथा 19 दृष्टव्य हैं।

राजा नहुष को प्रतिष्ठित किया गया। नहुष ने इन्द्र पद का दुरुपयोग किया।[8] बाह्य व्यक्ति को राजा बनाने के सम्पूर्ण खतरे उठाये जा सकते थे किन्तु नारी को राजा (रानी) बनाने को सोचा भी नहीं जा सकता था। अन्य उल्लिखित है कि एक थे राजा भंगास्वन। एक विशेष सरोवर में स्नान करने से वे नारी हो गये। नारी होने पर उन्हें राज पद त्यागना पड़ा। नारी और राजत्व एक साथ सम्भव नहीं थे।[8.1] ऐसी थी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की मानसिकता।

राजमहिषी :

यद्यपि राजकीय पद सोपान व्यवस्था में रानी (राजा की पत्नी) का कोई संवैधानिक दायित्व नहीं था फिर भी उसकी संवैधानिक मान्यता थी। राजा के राज्यारोहण के समय राजा के साथ–साथ रानी का भी अभिषेक किया जाता था।[9] स्पष्ट है कि प्रारम्भ में राज्य संचालन में नारी और पुरुष की भूमिका समान थी। दोनों के सहयोग से राज्य का प्रशासन तंत्र चलाया जाता था। किन्तु बढ़ते पुरुष वर्चस्व ने राज्य में नारी की वास्तविक भूमिका को कालातीत बना दिया और वह भूमिका राज्यारोहण समारोह में कर्म काण्ड के रूप में जीवित बची रही। इतने पर भी रानी केवल सजावट या दिखावे की वस्तु नहीं थी, उसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। रानी की भूमिका और उसकी स्थिति उसके मातृ परिवार की शक्ति और प्रभाव, उसके स्वयं के व्यक्तित्व, ज्ञान, अनुभव, साहस तथा अध्यवसाय के अनुसार न्यूनाधिक होती रहती थी।

राज्य में रानी का दायित्व निभाने के लिये नारी को चार चरणों में अपनी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता था : प्रथम–राजकुमारी, द्वितीय–युवराज्ञी, तृतीय–रानी

---

(8) चतुर्थ अध्याय, सन्दर्भ संख्या 15

(8.1) महा. अनु. 12.21, 22

(9) रामा. युद्ध काण्ड, 128.59, रामा. अयोध्या. 5.9, महा. शान्ति. 40.41

तथा चतुर्थ—राजमाता।

राजकुमारी :

जन्म से लेकर युवती होने तक राजकुमारी पिता के घर रहती थी। इस समय अन्तराल में उसे अनुशासन, सत्यनिष्ठा, आत्म त्याग, दृढ़ता, पतिव्रत्य तथा राजधर्म की शिक्षा दी जाती थी। जो उसके भावी जीवन में अत्यन्त उपयोगी होती थी। राजकुमारी दमयन्ती ने जब एक बार राजा नल को मानसिक रूप से वरण कर लिया तो इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण जैसे देवताओं का देवत्व, वैभव, प्रलोभन, धमकी तथा षड़यंत्र भी उसे अपने दृढ़ निश्चय से न डिगा सके। उसने देवताओं के प्रणय निवेदन को ठुकराते हुये राजा नल के गले में ही वर माला डाली।[10]

राजकुमारी सावित्री ने, जानते हुये भी कि उसके द्वारा चयनित भावी पति सत्यवान राज्यच्युत अल्पआयु—मात्र एक वर्ष की जीवनावधि वाला है, उसे हृदयदान दिया, तो सदैव के लिये दिया। एक वर्ष बाद की आजीवन वैधव्य की विभीषिका, महर्षि नारद के उपदेश और पिता का आग्रह भी उसे दृढ़ निश्चय से विचलित करने में असमर्थ रहे। उसने सत्यवान से ही विवाह किया।[11]

भीष्म पितामह जब काशिराज की पुत्री अम्बा को उसकी दो अन्य बहिनों समेत अपने भाई से विवाह करने के लिये अपहृत कर लाये तो अम्बा ने स्पष्ट रूप से भीष्म को बता दिया कि वह शाल्वराज की वाग्दत्ता हैं किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकती। शाल्वराज के द्वारा ठुकराये जाने पर उसने असहाय, अबला की भाँति विलाप नहीं किया और न सहायता के लिये पिता की शरण में गई। उसने भीष्म से कहा कि वह

---

(10) महा. वन. 57.22—28
(11) महा. वन. 294.26—28

उसको अपहृत कर लाये थे अतएव वह उससे विवाह करें। भीष्म द्वारा उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिये जाने पर उसने भीष्म के गुरु परशुराम को भीष्म को दण्ड देने के लिये प्रेरित किया। परशुराम के पराजित हो जाने पर भी वह हताश नहीं हुयी। उसने तपस्या कर शक्ति अर्जित की और अन्ततोगत्वा भीष्म को दण्ड देने में सफल हुई।(12)

कभी—कभी सशर्त स्वयंवर भी आयोजित किये जाते थे। ऊपर से प्रतीत होता है कि शर्त पूरी करने वाले से ही राजकुमारी को विवाह करना पड़ता था, उसकी स्वयं की इच्छा का कोई मूल्य नहीं था। किन्तु ऐसा नहीं था, यदि राजकुमारी को प्रतीत होता कि कोई युवक उसके स्तर या माप की सीमा से निम्न है तो वह उसे स्वयंवर की शर्त पालन करने से रोक सकती थी। पांचाल राजकुमारी कृष्णा (द्रोपदी) ने कर्ण को अपने से हीन स्तर का समझ कर मत्स्य भेद करने से रोक दिया था।(13) यह उसके साहस, दृढ़ निश्चय और स्वतन्त्र निर्णय का प्रमाण है। ऐसी होती थी महाकाव्य कालीन युग की दृढ़ संकल्पित, साहसी एवं क्षमताशाली राजकुमारियाँ। विवाह पूर्व का प्रशिक्षण, अनुशासन तथा पितृ कुल का पर्यावरण उन्हें ऐसा बनाता था।

युवराज्ञी :

जब कभी किसी राजकुमारी का विवाह किसी राज्य के युवराज से होता तो ससुराल में आकर वह युवराज्ञी के पद पर प्रतिष्ठित होती थी। पिता के घर पर रह कर उसने जो शिक्षा, अनुशासन तथा चरित्र पाया था वह उसके युवराज्ञी काल में सहायक होता था। युवराज्ञी सावित्री ने वन में रह कर अपनी सतत सावधानी, पति की निरन्तर सेवा सुश्रुषा तथा बुद्धिमत्ता से पति को आसन्न मृत्यु के जबड़े से सुरक्षित बाहर निकाल

---

(12) महा. उद्योग. 174.6—9; वही. 175.34; वही 177.39—42
वही. 186.9, 31, 32, वही. 187.4—6, 8

(13) महा. आदि. 186.21, 23

लिया था। यम से संवाद करते हुये उसने विवेक, धर्म, वर्णधर्म की जो व्याख्या प्रस्तुत की थी वह युवराज्ञी सावित्री की विद्वत्ता, दृढ़ता, निर्भीकता तथा प्रत्युत्पन्न बुद्धि का प्रमाण हैं अपने इन्हीं गुणों के बल पर वह अपने श्वसुर के खोये हुये राज्य का उद्धार करने में भी सफल हुई।[14]

युवराज्ञी सीता ने जब देखा कि उसके पति को युवराजत्व से वंचित कर वनवास दिया जा रहा है तो उसने अपने चरित्रिक बल और दृढ़ता का परिचय देते हुये प्रतिस्पर्धी भरत की छत्र–छाया में राज महल में रहने की अपेक्षा वन के कष्टसाध्य जीवन को वरीयता दी। सास–ससुर, सुहृदयों और पति के समझाने–बुझाने पर भी वह अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं हुई। उसने दृढ़ता व साहस का परिचय देते हुये घोषणा की वह ''पति की अनुगामिनी बनने नहीं जा रही है, वह उनका पथ प्रदर्शन करेगी और आगे–आगे चलेगी।''[15]

चित्रकूट में अयोध्या लौटने के भरत के अनुरोध को अस्वीकार करते हुये जब राम ने उन्हें राजपद स्वीकारने का आग्रह किया और स्वयं उनकी अधीनता में कार्य करने का विश्वास दिलाया, उस समय सीता ने अपने मनोभावों को दृढ़ता से प्रकट करते हुये घोषित किया कि जिस भरत के कारण राम का अभिषेक रोक दिया गया उसकी अधीनता में राम न ही रहे, सीता नहीं रह सकती।[16]

रावण जब सीता को बलपूर्वक अपहरण कर लंका की ओर लिये जा रहा था उस भयानक संकट के समय भी सीता ने अपने विवेक और मानसिक संतुलन को नहीं खोया। साहसपूर्वक अपनी मुक्ति का प्रयास करती रहीं। मार्ग में गिद्धराज जटायु से रावण का भय त्याग कर रावण द्वारा अपने अपहरण की सूचना राम को देने का अनुरोध

---

(14) महा. वन. 297.24, 25, 30, 33, 43, 47

(15) रामा. अयो. 27.7.17, वही. 28. पूरा अध्याय; वही. 30.46

(16) रामा. अयो. 30.9

किया था। ऋष्यमूक पर्वत पर वानरों को देखकर उन्होंने अपने आभूषण इस आशा से उनके पास फेंक दिये थे कि शायद राम से इनकी भेंट हो जाये और राम आभूषणों को देखकर सीता के अपहरण कर्ता का पता लगा सकें।[17]

अशोक वन में प्रवेश कर जब हुनमान ने अपने को रामदूत बताया तब सीता ने सहज ही उन पर विश्वास नहीं किया। यह उनकी सतत् सावधानी का प्रतीक है। उन्हें शंका हुयी कि कहीं यह शत्रु का षड़यंत्र न हो। उन्होंने हर सम्भव प्रयास से हनुमान की परीक्षा लेकर अपने को सन्तुष्ट कर लिया तभी उन पर विश्वास किया। फिर भी पूर्ण विश्वास नहीं किया, उनके साथ चलने को वह किसी तरह तैयार नहीं हुई।[18] वह कुंये से निकल कर खाई में नहीं गिरना चाहती थी।

लंका विजय के उपरान्त सीता ने अपनी सदाशयता का परिचय देते हुये हनुमान के द्वारा उन प्रहरी राक्षसियों का वध नहीं होने दिया था, जो सीता की सुरक्षा हेतु रावण द्वारा नियुक्त की गयीं थीं। सीता की दृष्टि में वे निर्दोष थीं।[19]

सीता उद्धार के बाद जब राम ने सीता को त्यागने की घोषणा करते हुये कहा कि उन्होंने रघुकुल की मान—सम्मान तथा मर्यादा की रक्षा करने के लिये लंकापति रावण का वध किया था, पराये घर में रहने वाली सीता के लिये नहीं। सीता जहाँ चाहें वहाँ चली जायें। इस अपमानजनक स्थिति का सामना सीता ने अनुकरणीय साहस और आत्मविश्वास से किया। सीता ने राम की भर्त्सना करते हुये कहा, "हे राम, तुम निम्न स्तरीय पुरुषों की भाँति निम्न स्तरीय स्त्रियों से कहने योग्य वचन क्यों बोलते हो ? एक पतित स्त्री को देखकर सम्पूर्ण नारी जाति को पतित समझना भूल है। आपने मेरे ऊपर क्षुद्र पुरुष के समान लांछन लगाया है, मेरे पुराने चरित्र को नहीं देखा। हे राम ! मेरा मन

---

(17) रामा. अरण्य. 49.40, वही. 54.2, 3
(18) रामा. सुन्दर. 35.2—4, वही. 37.45—48
(19) रामा. युद्ध. 113.38, 39

पर तो वश था, शरीर पर नहीं, मैं परवश थी।"[20] ऐसी सुयोग्य युवराज्ञी समय आने पर राजमहिषी का दायित्व भली भांति निभाती थी।

रानी :

राजपद रिक्त होने पर युवराज का राज्याभिषेक किया जाता था। उसके साथ युवराज्ञी का भी अभिषेक किया जाता था। अभिषेक के उपरान्त वह रानी बनती थी। तभी से उसके अधिकारों और कर्तव्यों की लम्बी श्रृंखला प्रारम्भ हो जाती थी। उसे विधि[21] श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण,[22] राजधर्म, [23] क्षात्र धर्म,[24] राजनीतिक ज्ञान,[25] ईश्वरीय ज्ञान,[26] प्रारब्ध पुरुषार्थ की विवेचना[27] करने की जानकारी आवश्यक थी। द्रोपदी ऐसी ही रानी थी।

अन्तःपुर की संवैधानिक प्रभारी :

महाकाव्यकाल में राजाओं में बहुविवाहप्रथा प्रचलित थी। राजा की कई–कई रानियां होती थीं। उनके अलग–अलग महल, दास–दासियां, सुरक्षा प्रहरी होते थे। प्रत्येक रानी अपने–अपने महल के प्रशासन की प्रभारी होती थी। कदाचित पट्टराजमहिषी सम्पूर्ण रनिवास की प्रभारी होती थी।[28] किन्तु वह अन्य रानियों के आन्तरिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। वह सामान्य कार्य ही देखती थी।

---

(20) रामा. युद्ध. 116.5–9
(21) महा. सभा. 67.47–52
(22) महा. उद्योग. 82.12–18
(23) महा. विराट. 16.1887
(24) महा. वन. 27.37–40
(25) महा. वन. 28.6–36
(26) वही. 30.2–8, 21–43
(27) वही. 32.3–59
(28) रामा. सुन्दर. 10.52

अन्तःपुर की समस्त परिचारिकाओं, ग्वालों, गड़रियों की व्यवस्था, उनमें कार्य विभाजन, उनके दायित्वों, कर्तव्यों का निर्देशन, निरीक्षण, उनके आवास, भोजन–पान की व्यवस्था रानी ही करती थी। राजपरिवार की समस्त आय व्यय तथा बचत का लेखा रखना तथा समस्त रनिवासीय कोष की जानकारी रखना रानी का ही दायित्व था। राजमहल से प्रतिदिन ब्राम्हणों तथा दीन–दुखियों को जो दान, भोजन वस्त्र आदि का वितरण किया जाता था। उसका प्रबन्ध तथा देख–रेख करना भी रानी के दायित्व क्षेत्र में आता था।

जब राजा राज्य के प्रशासनिक निरीक्षण, आखेट या धार्मिक यात्रा के लिये निकलता था उस समय यात्रा सम्बन्धी सभी प्रबन्ध करना, खाद्य–पेय, वाहन आदि की माप–तौल तथा गणना करना और देखना कि यात्रा प्रबन्ध में कोई त्रुटि न रहे, रानी का महत्वपूर्ण दायित्व था। द्रोपदी–सत्यभामा संवाद प्रकरण में इस पर व्यापक प्रकाश डाला गया है।(29)

राजा की परामर्शदात्री –

यद्यपि राजा को मंत्रणा देना रानी का संवैधानिक दायित्व नहीं था और न रानी मंत्रिमण्डल की औपचारिक सदस्या ही होती थी, फिर भी विशेष अवसरों तथा परिस्थितियों में रानी राजा को महत्वपूर्ण परामर्श देती थी। उसका परामर्श कितना प्रभावी होता था यह राजा के स्वभाव, ग्राह्य क्षमता एवं रानी की योग्यता, क्षमता, उसका प्रभा मण्डल तथा उसके मातृकुल की शक्ति–वैभव से निर्धारित होता था।

राजा को अनुचित कार्य में प्रवृत्त होने से रोकने के लिये रानियाँ राजा को समुचित परामर्श देती थी। लंका की महारानी मन्दोदरी ने सीता को लौटाने तथा राम से

---

(29) महा. वन. 233.45, 48, 50–56

सन्धि करने के लिये रावण को बार–बार समझाया था।[30] इसी प्रकार जब राजा जनक संसार त्याग कर सन्यास लेने को तत्पर हो गये तब उनकी रानी ने राजा को संसार त्याग की सार हीनता, गृहस्थ धर्म का महत्व, सच्चे सन्यासी और सदा मुक्त व्यक्ति के लक्षण और आचरण की सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत कर संसार–त्याग से विमुख किया था।[31] बालि से द्वन्द्व युद्ध में हार कर सुग्रीव भाग गया और कुछ देर बाद उसने पुनः आकर बालि को ललकारा और बालि उससे युद्ध करने के लिये जाने लगा। उस समय बानर राज्य की रानी तारा ने पति को युद्ध में न जाने की परामर्श देते हुये कहा, ''पराजित शत्रु इतनी शीघ्र युद्ध में ललकारने आ गया इसका सीधा अर्थ है कि उसे कोई प्रबल सहायक मिल गया है। उत्तेजना में युद्ध के लिये मत निकलो।''

उसने सुग्रीव को युवराज पद देकर सन्धि का भी सुझाव दिया। साथ ही रहस्योद्‌घाटन किया कि उसने अपने पुत्र अंगद के माध्यम से गोपनीय रूप से राम और सुग्रीव की मैत्री का भी पता लगा लिया है।[32]

राजा नल को द्यूत से निवृत करने के लिये महारानी दमयंती ने केवल उन्हें परामर्श देकर रोका ही नहीं अपितु मंत्रियों को प्रेरित भी किया कि वे राजा को इस अनुचित कार्य से रोकें।[33] महाभारत के सर्वसंहारकारी भयानक युद्ध की विभीषिका ने महाराज युधिष्ठिर का मन संसार से विरक्त कर दिया। उन्होंने वैराग्य लेने का निश्चय किया। उस समय महारानी द्रोपदी ने राजधर्म की विवेचना करते हुये उन्हें राज्य न त्यागने को तत्पर किया था।[34]

---

(30) रामा. युद्ध. 111.18, 19
(31) महा. शान्ति. 18.3–36
(32) रामा. किष्किन्धा. 15.10–25
(33) महा. वन. 59.15–17; वही. 60.5–8
(34) महा. शान्ति. 14.13–20, 37–39

राजनीतिक कार्य :

राजपद की प्रकृति ही मादक होती है। काम निकल जाने पर प्रायः राजा लोग उपकारी को भूल जाते हैं, उनसे किये गये वादे की उपेक्षा करने लगते हैं। स्वाभाविक है कि उपकारी के मन में भी क्रोध–प्रतिरोध के भाव उत्पन्न हों। वे भी उपकृत राजा को दण्ड देने की योजना बनाने लगें। बालि वध के उपरान्त राम ने सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया था। सुग्रीव ने सीता की खोज कराने में भरसक सहयोग देने का वादा किया था। वर्षा काल के चार मास बीत जाने पर भी राम को सुग्रीव की ओर से कोई उपक्रम होता नहीं दिखाई दिया। उन्होंने लक्ष्मण को सुग्रीव की राजधानी में भेजा और उसे किसी भी तरह सीता की खोज में कार्य करने के लिये प्रेरित करने का आदेश दिया।

क्रोधित लक्ष्मण ने कृतघ्न सुग्रीव को उसी रास्ते पर भेजने की धमकी दी जिस पर कुछ दिन पहले उसके भाई बालि को भेज दिया गया था। भयभीत सुग्रीव को सांत्वना देकर वानरों की रानी ने अपने युक्तपूर्ण शब्दों से लक्ष्मण को शान्त किया और साथ ही स्पष्ट कर दिया कि सुग्रीव की सहायता के बिना सीता की खोज और रावण पर विजय असम्भव है।[35] अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें स्पष्ट कर दिया कि सुग्रीव के विरुद्ध बल प्रयोग की धमकी निरर्थक है। दो सत्ताधारियों के मध्य वानर महारानी की सन्तुलनकारी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं।

राजनीति में कभी–कभी ऐसे भी क्षण आते हैं जब राजा और उसके सहायक हतोत्साहित हो जाते हैं, उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझता। ऐसे विषम समय में भी रानियां अपना धैर्य और सन्तुलन नहीं छोड़ती थीं। जब पाण्डव और उनके सहायक एवं परामर्शदाता कृष्ण कौरवों से राज्य वापिस लेने के लिये संन्धि करने की मंत्रणा में व्यस्त थे उस समय द्रोपदी ने इस प्रकार के प्रयासों की निश्चित असफलता का अनुमान लगाते

---

(35) रामा. किष्किन्धा. 33.51–57, वही. 35.17–20

हुये अपना अधिकार प्राप्त करने के लिये पाण्डवों को प्रेरित करते हुये कहा था, "मै कुरुकुल की सती वधू हूँ फिर भी दुःशासन मुझे बलपूर्वक मेरे अंतःपुर से भरी सभा में खींच लाया। मेरे बलशाली पांचों पति निर्लिप्त हो देखते रहे। कर्ण ने भरी सभा में मुझे पुंश्चली कहकर अपमानित किया (कृष्ण को सम्बोधित करते हुये) आप लोगों ने निम्न स्तरीय लोगों द्वारा किया गया मेरा अपमान सह लिया, उनकी उपेक्षा कर दी। मेरे लिये न पति है, न पुत्र न बान्धव, न भाई, न पिता, न आप (कृष्ण)"[36] ऐसे वचनों से उसने पाण्डवों को लज्जित कर युद्ध करने के लिये उत्साहित किया।

जब पाण्डव अपने शत्रुओं से सन्धि वार्ता कर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे और श्री कृष्ण को दूत बनाकर हस्तिनापुर भेज रहे थे, उस समय भी हठी और दम्भी शत्रु से सन्धि करने की व्यर्थता को समझते हुये द्रौपदी ने श्री कृष्ण को अपने खुले हुये केशों को दिखाकर कहा, "हे कृष्ण, सन्धि की बात करने जा रहे हो, जाओ, पर मेरे इन खुले केशों और मेरी प्रतिज्ञा को (दुःशासन के रक्त से धोकर ही केश बांधे जायेंगे) याद रखना। यदि मेरे पति कायरतापूर्वक युद्ध से विमुख हो गये तो मेरे वृद्ध पिता अपने पुत्रों सहित रण क्षेत्र में उतरेंगे, साथ ही अभिमन्यु सहित मेरे पांचों पुत्र भी शत्रु से मेरे अपमान का प्रतिशोध लेंगे। (अब धैर्य चुक गया है) प्रतिज्ञा पूरे होने की प्रतीक्षा करते–करते तेरह वर्ष बीत गये हैं।[37]

अन्ततोगत्वा द्रोपदी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में सफल हुयी। द्रोपदी के इन उद्‌गारों के पीछे मातृ सत्ता युगीन प्रभाव स्पष्ट रूप से दिख रहा है। पति पक्ष के अकर्मण्य होने पर पत्नी अपने मातृ पक्ष तथा पुत्रों का सहारा ले सकती थी। पुत्रों पर अभी माता का अधिकार परिलक्षित होता है।

---

(36) महा. वन. 12.121, 125, 126

(37) महा. उद्योग. 82. 36–40

उत्तराधिकार तथा रनिवासीय षड़यन्त्र –

महाकाव्य काल में राजाओं में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। स्वाभाविक था कि प्रथम पत्नी तथा अन्तिम पत्नी की आयु में पर्याप्त अन्तर रहता था। बढ़ती आयु में स्वाभाविक था राजा अपेक्षाकृत युवा तथा सुन्दर नई रानी को प्रथम रानी की तुलना में वरीयता देता। यह प्रवृत्ति ज्येष्ठ पुत्र को युवराज बनने के सिद्धान्त के मार्ग में बाधायें उत्पन्न करती थी। सभी रानियाँ चाहती थीं कि ऐन–केन–प्रकारेण उनका ही पुत्र राजा का उत्तराधिकारी बने।

इसके लिये तरह–तरह की कहानियां गढ़ी जाती, पुराने आख्यान खोजे जाते(38) तथा हर तरह के रनिवासीय षड़यन्त्र रचे जाते थे। राजा अपनी काम तथा वैभव लिप्सा के वशीभूत होकर स्वयं ये जाल रचाते और उसमें फंस जाते। कभी–कभी तो उन्हें अपने प्राण देकर ही इस विलासिता का मूल्य चुकाना पड़ता था। राजा दशरथ के साथ भी ऐसा ही हुआ था। उत्तराधिकार को लेकर उनकी दो रानियों में संघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी। षड़यन्त्र के चलते दो सम्भावित प्रतिस्पर्धियों–राम और भरत में से एक–भरत को ननिहाल भेज दिया गया। दूसरे के अभिषेक की तैयारी की जाने लगी। भरत की माता को सूचित तक करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। किन्तु अपने सूचना माध्यमों के सहारे कैकेयी (भरत की माता) को पता चल ही गया।

उसने राजा द्वारा दिये गये दो पुराने वरदानों का सहारा लेकर राम के स्थान पर अपने पुत्र भरत को युवराज बनाने और राम को चौदह वर्ष के लिये वन में निष्कासित करने का राजा से उनकी इच्छा के विरुद्ध आदेश पारित करवा लिया। राम को वन में जाना पड़ा और राजा को इस षड़यंत्र यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।(39)

---

(38) वैश्य एक, क्षत्रिय स्त्री दो, क्षत्रिय तीन तथा ब्राम्हण सौ वर प्राप्त करने का अधिकारी था। महा. सभा. 71.35

(39) रामा. अयोध्या. 18.33; वही. 36.12

रानी का व्यक्तित्व :

स्पष्ट है कि राज्य–प्रशासन में रानी की भूमिका प्रमुख थी। उसकी इस स्थिति का प्रमुख निर्धारक तत्व उसका स्वयं का व्यक्तित्व था। देवासुर संग्राम में राजा दशरथ के रथ की सारथी उनकी रानी कैकेयी थी। रथ की कीली निकल गई और रथ का पहिया गिरने को हुआ। इसी समय रणक्षेत्र में राजा घायल होकर युद्ध करने में अक्षम हो गये। उस समय रानी कैकेयी ने उन्हें रणक्षेत्र से सुरक्षित निकालकर उनकी प्राण रक्षा की थी। अपने इसी साहस और कार्यकुशलता के सहारे कैकेयी की प्रभावशाली भूमिका बनी थी।[40]

वानरों का राजा बालि तो अपनी रानी तारा की सूक्ष्म निर्णय क्षमता, आसन्न संकट का पूर्वाभास पाने की योग्यता, विश्वसनीयता तथा विश्वसनीय मंत्रणा का बेहद प्रशंसक था।[41] अपने इसी प्रभावी व्यक्तित्व के कारण बालि और बाद में सुग्रीव के शासन में उसकी उपस्थिति सदैव अत्यन्त प्रभावशाली रही।

पाण्डवों की रानी द्रोपदी ने भयानक संकट के समय जिस धैर्य और योग्यता का परिचय दिया वह अत्यन्त प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय था। महाराज युधिष्ठिर जुये में अपना सर्वस्व और भाइयों समेत अपने को भी हार गये। उन्होंने अपनी रानी द्रोपदी को भी दांव पर लगा दिया और उसे भी हार गये। कौरव कुमार दुःशासन रजस्वला द्रोपदी को राजसभा में घसीटते हुये ले आया था। उसे दासी तथा पुंश्चली कहकर अपमानित किया गया। द्रौपदी ने बड़े साहस तथा दृढ़ता से कौरव राजसभा में द्यूत के निर्णय को अवैधानिक घोषित कर दिया। उसने दो अत्यन्त वैधानिक प्रश्न उठाये। प्रथम प्रश्न था, जो राजा पहले ही अपने को दांव पर लगा कर हार चुका है, दास बन गया है उसके पास

---

(40) रामा. अयोध्या. 9.11, 15, 16

(41) रामा. किष्किन्धा. 22.13, 14

अपनी रानी को दांव पर लगाने के लिये अधिकार कैसे रह गया ? द्रोपदी को दांव पर लगाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही अवैधानिक थी। दूसरा, प्रश्न था, द्यूत की क्रिया भी एक प्रकार की युद्ध हैं दोनों में हार जीत होती है, दोनों में निश्चित नियम होते हैं। जैसे युद्ध में समान योद्धाओं में ही युद्ध होता है, पैदल और अश्वारोही के बीच असमान युद्ध वर्जित है, उसी प्रकार द्यूत क्रीड़ा से अनभिज्ञ खिलाड़ी युधिष्ठिर और शकुनि जैसे द्यूत विद्या विशारद के मध्य खेला गया जुआ अप्रभावी माना जाय। द्रौपदी के इसी विधि शास्त्रीय ज्ञान से प्रभावित हो महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों सहित द्रौपदी को दास भाव से मुक्त कर दिया था।[42] ऐसी होती थीं उस युग की प्रतिभाशाली रानियां जो अपना सुख–भोग छोड़कर दिन रात अपने कर्तव्य पालन में सन्नद्ध रहती थीं।[43]

ज्यों–ज्यों पितृ सत्ता दृढ़ से दृढ़तर होती गयीं और सामन्ती व्यवस्था जड़ पकड़ती गयीं त्यों–त्यों रानियों की स्थिति और प्रभाव में ह्रास दिखाई पड़ने लगा। लंका विजय के उपरान्त राम द्वारा सीता–त्याग की निर्लज्ज घोषणा[44] इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करती हैं। अग्नि परीक्षा में खरी प्रमाणित होने पर भी एक मामूली धोबी की कही हुयी बात को महत्व देते हुये बिना विचारे राम ने सीता को त्याग दिया।[45] यह घटना नारी के वृद्धिमान अवमूल्यन की ओर संकेत करती है। सीता राम के निर्णय का विरोध भी न कर सकीं। उनके लिये पति देवता, बन्धु और गुरु था। प्राण देकर भी पति का प्रिय करना चाहिये। वे बिना विरोध किये वन चलीं गयीं।[46] रानियों की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति निरंतर गिरती जा रहीं थी। रानियां व्यक्तित्वविहीन, जुये के दांव पर लगाने योग्य वस्तु मात्र रह गयी थी।[47]

---

(42) महा. सभा. 67.47–52
(43) महा. वन. 233.55
(44) रामा. युद्ध. 115.15, 16, 21
(45) रामा. उत्तर. 45.14–17
(46) रामा. उत्तर. 48.17, 18
(47) द्रोपदी को जुयें में दांव पर लगाया गया था।

राजमाता :

एक दिन वह भी आता जब राजा सदैव के लिये चिर निद्रा में सो जाता था। उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ होता और पुरानी रानी राजमाता कहलाने लगती थी। राजमाता के रूप में उसके राजनीतिक कार्यों पर पूर्ण विराम नहीं लग जाता था। अपने पुत्र के शासन काल में वह निरंतर जागरूक तथा सतर्क रहती थी। राजमातायें प्रायः यशस्वनी, मानिनी, जितेन्द्रियां, क्षत्रिय–धर्मपरायणा तथा दूरदर्शी होती थी। उनकी राजाओं की संसदों (राजाओं के सम्मेलनों) में बड़ी ख्याति होती थी।[48]

राजमाता के महत्व का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि जब कभी किसी राष्ट्रीय संकट के अवसर पर यदि राजा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर राज्योचित निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता अथवा राजधर्म को तिलांजलि देने की हठ करने लगता था तो मंत्रिगण राजमाता को राजसभा में आमन्त्रित करते थे। राजमाता अवसर के अनुकूल राजव्यवहार आचरण, राजधर्म के सिद्धान्त, युद्ध के दोष, पारस्परिक फूट के दुष्परिणामों पर विस्तृत प्रकाश डालती तथा राजा को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करती थी।

राजमाता महारानी गांधारी ने कौरव राजसभा में जाकर दुर्योधन को समझाने का भरसक प्रयत्न किया था।[49] लंका के राक्षसों की राजमाता ने भी अपने पुत्र राक्षसराज रावण को सीता को लौटाने का परामर्श दिया था।[50] शत्रुओं के हाथों में राज्य के चले जाने पर हतोत्साहित राजा को राजमाता उत्साहित करती, धैर्य धारण कराती, राजधर्म का उपदेश देतीं, शत्रु विजय का उपाय सुझाती और राज्योद्धार हेतु प्रेरणा देती थीं। राज्य की विभिन्न प्रकृतियों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका भी मार्ग सुझाती।

---

(48) महा. उद्योग. 133.2, 3

(49) वही. 129.22–54

(50) रामा. युद्ध. 34.20

राजमाता विदुला ने राज्यच्युत अपने पुत्र संजय को इसी प्रकार उत्साहित किया था।[51] राजमाता कुन्ती ने भी अपने पुत्रों–पाण्डवों को शक्ति रहते अपना न्यायोचित अधिकार–पैतृक राज्य को प्राप्त करने के लिये कायरता छोड़ कर अपनी पूरी शक्ति से युद्ध करने को प्रेरित किया था।[52]

राजमाता यथासम्भव अपने व्यक्तित्व का प्रयोग कर शत्रु में भेद उत्पन्न कर फूट डाल कर उसे दुर्बल करने की चेष्टा करती थी। राजमाता कुन्ती ने कर्ण को अपना पुत्र बता कर कौरव पक्ष छोड़कर पाण्डवों से मिल जाने के लिये प्रलोभित किया था।[53]

महाभारत युद्ध के पन्द्रह वर्ष बीत जाने के बाद महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी के साथ राजमाता कुन्ती ने भी सन्यास आश्रम में प्रवेश करने का निश्चय किया।[54] उस समय उन्हें सन्यासव्रत से विमुख करने के लिये पाण्डवों ने प्रार्थना करते हुये कहा था, "माता, यदि तुम्हें राज्य सुख नहीं भोगना था और राज्य त्यागना ही था तो हमें युद्ध करने के लिये क्यों प्रोत्साहित किया था, क्यों इतना भीषण नरसंहार होने दिया था ?

राजमाता कुंती का उत्तर द्रष्टव्य है। "पुत्रों, मैने राजसुख भोग के लिये तुम्हें युद्ध करने को प्रोत्साहित नहीं किया था। वनवास के भयानक कष्टों से तुम शिथिल और हतोत्साहित हो रहे थे, जुये में राज्य हारकर तुम अपमानित जीवन जीने पर विवश थे। पुत्र–वधू द्रोपदी को पुनः शत्रु द्वारा अपमानित न होना पड़े, तुम्हें दूसरों की दासता के बंधन में न बंधना पड़े और हमारे कुल के यश का नाश न हो। इसलिये मैने तुम्हें अपने न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया था। तुम्हारे पिता के राज्य में मैने बहुत राजसुख भोग लिया था, दान और यज्ञ कर लिये थे। मैं पुत्रों द्वारा जीते राज्य

---

(51) महा. उद्योग. 133.5–34, वही 136, पूरा अध्याय
(52) वही. 132.32, वही. 133, 134 पूरे अध्याय
(53) महा. उद्योग. 145.1–4
(54) महा. आश्रम. 3.12

का भोग नहीं चाहती, अपनी तपस्या के बल से पुण्य और पति लोक पर विजय प्राप्त करूंगी।''(55) कितना आत्म विश्वास है एक वृद्धनारी में ! शारीरिक दृष्टि से शिथिल होते हुये भी उसे अपनी तपस्या का भरोसा है, उसे किसी के सहारे तथा सम्बल की आवश्यकता नहीं, यहाँ तक कि पुत्रों के भी सहारे की नहीं।

किसी विशेष सांविधानिक व्यवस्था के न होते हुये भी रानी के रूप में नारी की महती भूमिका रहती थी – राजकुमारी से लेकर राज्य त्याग पर्यन्त राजमाता के स्तर तक।

राज्यसभा में नारी :

राज्य पूर्व की अवस्था में जन से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिये जन के सभी वयस्क सदस्य एक साथ मिलकर बैठकर परामर्श करते और निर्णय लेते थे; निश्चय ही इस प्रकार के सम्मेलन में सभी वयस्क स्त्री–पुरुष भाग लेते होंगे। यही जन की सभा कहलाती थी। ऐसी सभा मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक दोनों ही व्यवस्थाओं में पायीं जाती थी। उत्तरी अमरीका के रेड इण्डियन लोगों की इरोक्वा जाति के सेनेका जन की सभा में सभी स्त्री–पुरुष भाग लेते और अपने नेता का चुनाव करते थे।(57)

आश्चर्य है कि संस्कृत के समस्त महाकाव्यीय साहित्य में किसी भी प्रकार के समाज, मातृ अथवा पितृसत्तात्मक, की सभा में नारी के भाग लेने का उल्लेख नहीं मिलता।

नागजन मातृ सत्तात्मक था। नागमाता कद्रू का आदेश सभी नागों के लिये

---

(55) वही. 16.20–28

(56) वही. 17.1, 4, 17, 19

(57) ऐंगिल्स : परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति, इरोक्वाई गोत्र

बाध्यकारी था, उल्लंघनकर्ता दण्ड का भागी होता था। किन्तु नागों की सभा में कोई नागिन सदस्या नहीं थी।[58] इसी प्रकार यादवों की सुधर्मा सभा में भी किसी महिला के भाग लेने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।[59] यादवों के सामूहिक संहार के बाद अर्जुन के अनुरोध पर जब यादवों की सभा आहूत की गयी तो उसमें भी कोई महिला सम्मिलित नहीं हुई थी।[60]

लंकापति रावण की सभा में भी केवल पुरुष (राक्षस) ही भाग लेते थे कहीं भी राक्षसियों के भाग लेने का उल्लेख नहीं मिलता।[61] महत्वपूर्ण अवसरों पर अवश्य कभी–कभी राज्यसभा में राजमाता को परामर्श हेतु विशेष रूप से आमंत्रित कर लिया जाता था।[62] ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता था, नियम नहीं था। यह परिघटना मातृसत्ता के पूर्ण पराभव की ओर संकेत करती है।

दासी और राज्य :

राज्य के उद्‌भव के साथ ही दास प्रथा अस्तित्व में आई। महाकाव्य काल में राजाओं के रनिवास दासियों से भरे रहते थे। विवाह के समय बधू के साथ–साथ दहेज के रूप में धन–धान्य के साथ दासियाँ भी भेजी जाती थीं। महारानी कैकेयी की दासी मंथरा भी उनके मायके से दासी रूप में आई थी।[63] सामान्यतः मायके से आयी दासियाँ अपनी स्वामिनी के प्रति भक्तिभाव रखतीं थीं।[64] उन्हें उनकी सौतों से सम्बन्धित तथा अन्य प्रकार की सूचनाओं से अवगत कराती रहती थीं।[65] रनिवासों में रहते–रहते दासियां

(58) महा. आदि. 37.2
(59) वही. 219.12
(60) महा. मौसल. 7.6–8
(61) रामा. युद्ध. 11.पूरा सर्ग
(62) महा. उद्योग. 129.22–54
(63) रामा. अयोध्या. 7.1
(64) रामा. अयोध्या. 7.10, 13

राजनीति के दांवपेंच से परिचित हो जाती थीं और यथाअवसर उनका प्रयोग करतीं थीं। दासियों का जीवन पराधीनता के अभिशाप से ग्रसित रहता था।[66]

असन्तुष्ट दासियाँ अवसर मिलने पर प्रतिशोध लेने से नहीं चूकती थीं। प्रायः यह रनिवासीय षड़यंत्रों की मुख्य सूत्रधार होती थीं अथवा सहायक की भूमिका निभातीं थीं। राम को वन में निर्वासित कराने और भारत को युवराज पद पर अभिषिक्त कराने के षड़यन्त्र में मुख्य भूमिका मंथरा दासी की ही थी। रानी कैकेयी तो उपकरण मात्र थी।[67]

सैनिक सेवा :

जन और जन राज्य की अवस्था में नारी और पुरुष, दोनों एक साथ कन्धे से कन्धा मिला कर रणक्षेत्र में उतरते थे। कभी–कभी तो सैन्य नियंत्रण नारी के ही हाथों में होता था। ताड़का अपने जन का सैनिक नेतृत्व करती थी। उसने अपने शत्रुओं के मलद तथा करूष नामक दो जनपदों को उजाड़ दिया था। राम के विरुद्ध लड़ते हुये उसने वीरगति पायी थी।[68] नारी सैनिक अपने क्षेत्रों के जल स्रोतों की भी रक्षा करती थीं।[69]

कैकेयी ने देवासुर संग्राम में अपने पति राजा दशरथ के रथ का सारथ्य सम्भाला था और मूर्च्छित राजा को वह सकुशल रणक्षेत्र से बाहर ले आई थी।[70]

राक्षस राज्य में नगर और अंतःपुर की सुरक्षा का भार महिला सैनिकों के सुदृढ़ स्कन्धों पर ही रहता था। रावण के राजमहल की रक्षा सशस्त्र महिला सैनिक करते थे।[71] महिला बन्दियों के ऊपर महिला सैनिक ही पहरेदारी करते थे।[72] ऐसा प्रतीत होता

(65) वही. 4.31; वही. 7.14
(66) वही. 78.16.24
(67) वही. 8.14–19.27–39
(68) रामा. बाल. 24.18, 29, 32; वही. 26.26
(69) महा. अनु. 93.78
(70) रामा. अयो. 9.15, 16
(71) रामा. सुन्दर. 6.30
(72) वही. 16.29, वही. 23.6–17, वही. 24.31

है कि बढ़ते पुरुष वर्चस्व के कारण महिला सैनिकों में असन्तोष तथा विद्रोह के भाव उत्पन्न होने लगे थे। त्रिजटा तथा सरमा नामक दो महिला राक्षस प्रहरियों ने रावण के आदेशों का उल्लंघन कर सीता को सांत्वना दी थी। राम की विजय का विश्वास दिलाकर अन्य महिला प्रहरियों का मनोबल तोड़ा था।[73]

राक्षसराज रावण की राजधानी लंका की सुरक्षा प्रभारी एक महिला सेनानी–लंका (लंकिनी) थी। हनुमान उसकी सुरक्षा व्यवस्था को चुपचाप भेद कर नगर में प्रवेश नहीं कर पाये थे। उन्हें लंकिनी ने रोका था तथा उनसे युद्ध किया था। अपने इस प्रयास में उसने वीरगति पायी थी।[74]

गुप्तचर :

शत्रु और मित्र के बलाबल का पता लगाना, मार्ग में शत्रु को रोकना, नष्ट करना अथवा मार्ग देना और सम्बन्धित आवश्यक सूचना उच्च अधिकारियों तक प्रेषित करना आदि महिला गुप्तचरों का दायित्व था। नागमाता सुरसा ने लंका की ओर जाते हनुमान की शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमता का परीक्षण किया था।[75] सिंहिका ने भी हनुमान को मार्ग में रोकने का प्रयास किया था।[76] सेतु बांधने के उपरांत जब राम की सेना लंका में उतर गयी उस समय सरमा नाम की राक्षसी गुप्तचर ने राम की सेना का गोपनीय रूप से निरीक्षण किया था।[77]

विरोधी पक्ष के सत्ता ग्रहण के प्रयासों में विघ्न उत्पन्न करना तथा उसे लक्ष्यच्युत या पथभ्रष्ट करना भी महिला गुप्तचरों का काम था। रम्भा तथा मेनका ने

(73) रामा. सुन्दर. 27.5, 6, 9–53; रामा. युद्ध. 34.14, 19
(74) रामा. सुन्दर. 3.20, 28, 30, 41
(75) वही. 1.157–171
(76) वही. 1.191–197
(77) रामा. युद्ध. 33.16

विश्वामित्र के तप को भंग कर देवराज इन्द्र की सहायता की थी।[78] इसी प्रकार अंगदेश के राजा के उत्तराधिकार की समस्या के समाधान हेतु महिला गुप्तचरों ने वैश्यारूप धारण कर श्रंगीऋषि का अपहरण किया था।[79]

महिलायें अति प्राचीन काल से गुप्तचरी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई हैं। जो भी हो इतना स्पष्ट है कि राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में नारियां महतवपूर्ण भूमिका निभातीं थीं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जैसे–जैसे मातृसता का प्रभाव घटता गया और पितृ सत्तात्मक राज्य सुदृढ़ होता गया वैसे–वैसे नारी की राजनीतिक भूमिका गौण से गौणतर होती चली गयीं। महाजनपदीय तथा चक्रवर्ती साम्राज्यों के युग तक आते–आते नारी की स्वतंत्र उपक्रम की भूमिका लगभग समाप्त हो गयी।

निष्कर्ष स्पष्ट है कि अतिरिक्त उत्पाद वह आधारभूत कारण है जो राज्य के उद्‌भव का निमित्त बना। राज्य की प्रारम्भिक चरण में था, नारियों की स्थिति राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली थी। किन्तु जैसे–जैसे विकास का पहिया आगे लुढ़कता गया वैसे–वैसे उसके अधिकार और प्रभाव को तराजू का पलड़ा विपरीत दिशा की ओर झुकता गया। व्यापक पशुपालन और पशुशक्ति पर आधारित विस्तृत क्षेत्र में फैली कृषि के काल में पुरुष सत्ता दिन पर दिन प्रभावी से प्रभावीतर होती गई। कुछ काल तक दोनों प्रकार की व्यवस्थायें साथ–साथ चलती भी रहीं किन्तु समय की लहरों के आघात ने नारी सत्ता के बेड़ों को जर्जर कर दिया और वह शनैः शनैः पुरुष सत्ता के सागर में विलीन हो गया। फिर भी उसके कुछ टूटे–फूटे टुकड़े यत्र–तत्र तैरते हुये दिखाई पड़ जाते हैं। पशुपालन, कृषि तथा वाणिज्य युगीन प्राविधिकी नारी सत्ता की तुलना में पुरुष प्रधानता के अधिक अनुकूल प्रमाणित हुई। इसी से पुरुष प्रधान व्यवस्था निरन्तर सुदृढ़ होती गई।

महाकाव्यों के विवरण में हमें एक ही देश और काल में विभिन्न जन गणों में

---

(78) रामा. बाल. 63.7; वही. 64.8
(79) वही. 10.7, 28

सभ्यता के विभिन्न स्तर देखने को मिलते हैं। रामायण वानर और भालू (ऋक्ष) आहार एकत्रण युग में थे, राक्षस आगे बढ़कर आखेट युग में प्रवेश कर चुके थे और सूर्यवंशी इक्ष्वाकु पशुपालन युग में जा पहुँचे थे। यही कारण है कि इन विभिन्न जनगणों के महिला पात्रों के व्यवहार में पर्याप्त अन्तर मिलता है। ताटका, लंकिनी जैसी योद्धा नारियाँ हैं तो सीता, कौशल्या जैसी सामान्य घरेलू नारियाँ भी हैं। हमारे देश में सभ्यता के ऐसे ही विभिनन स्तर देखने को मिलते हैं। एक ओर अत्यन्त शिक्षित, वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न, आधुनिक सभ्यता में रंगे व्यक्ति पाये जाते हैं। दूसरी ओर सामन्ती रूढ़ियों में जकड़े, जड़ मानसिकता वाले निरक्षर जन समुदाय भी दिखाई पड़ते हैं।

एक अन्य विरोधाभास भी तत्कालीन पात्रों के चरित्र में परिलक्षित होता है। एक ओर अधिकार चेता, निर्भीक सीता खुलेआम घोषणा करती हैं कि राम भले ही भरत की अधीनता में रहें, सीता उस भरत की अधीनता में नहीं रह सकती जिसके कारण राम को राज्यच्युत होना पड़ा और वन में निष्कासित होना पड़ा है। वही सीता अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर भी राम द्वारा अपने निष्कासन को सहज ही बिना विरोध के स्वीकार कर लेती है। जुये में हारे जाने के उपरान्त कौरवों की राजसभा की विकट–विषम परिस्थितियों का साहस, धैर्य, शालीनता, गम्भीरता, कुलीनता तथा विद्वत्ता से सामना करने वाली पाण्डव महारानी द्रौपदी बिना किसी हिचक के दुःशासन की उखाड़ी गई भुजाओं के रक्त से अपने केश बाँधने की बर्बर प्रतिज्ञा करती ही नहीं, उसे पूरा भी करती है। एक ही व्यक्ति के ऐसे विरोधी आचरणों का क्या रहस्य है ? प्रायः महाकाव्यों की पुराकथायें कभी–कभी कई–कई असम्बद्ध कथाओं के मेल से नये रूप में अवतीर्ण होती रहती हैं। भिन्न–भिन्न रचनाकरों की अवधारणायें तथा आदर्श परस्पर गड्मगड्ड हो जाते हैं। समय की करवट के साथ–साथ कुछ पुरानी बातें छूटती जाती हैं और नई जुड़ती जाती हैं। इसी से ऐसे विरोधाभास दिखाई पड़ जाते हैं। किन्तु इतना स्पष्ट है कि

महाकाव्यों के लम्बे समय अन्तराल में नारी की राजनीतिक भूमिका निरन्तर गतिमान बनी रही, कभी नारी पुरुष की सहचरी, सहगामिनी रही, कभी अनुचरी और अनुगामिनी।

षष्टम अध्याय

षष्टम अध्याय

उपसंहार

मानव इतिहास के घुंधले प्रभात में जब विकास का सुबह का तारा उगा तभी से यथास्थिति तथा परिवर्तन के दो विपरीत बल मानव जीवन को निरंतर प्रभावित करते आ रहे हैं। प्रारम्भ में प्रकृति के अन्धे नियम उसे नियति के खूंटे से बांधे रहे, साथ ही प्राकृतिक परिवेश से क्रिया–प्रतिक्रिया करता मानव अध्यवसाय और बौद्धिक क्षमता उसे प्रकृति को समझने और उसे नियन्त्रित करने को प्रेरित करते रहे। वर्गीय समाज के अस्तित्व में आने पर यह युद्ध चलता ही रहा। मानव प्रकृति के संघर्ष के साथ–साथ मानवों के परस्पर विरोधी वर्गों में भी वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई।

सुविधाभोगी वर्ग यथास्थिति बनाये रखने तथा वंचित वर्ग अपनी मुक्ति के लिये ऐन–केन–प्रकारेण प्रयत्नशील होते रहे। इतिहास साक्षी है कि बलों के इस द्वन्द्व में परिणामी बल सदैव परिवर्तन की दिशा में झुका रहा। मानव जड़, घनीभूत नहीं रहा उसका सार्थ कभी रुका नही। हां, कभी–कभी उसने मार्ग में यत्र–तत्र कुछ अस्थायी पड़ाव अवश्य डाले जिन पर उसने कुछ दिन विश्राम किया और आगे बढ़ने के लिये नई ऊर्जा अर्जित की।

इस लम्बे यात्रा अभियान में स्त्री–पुरुष की भूमिका भी निरंतर गत्यात्मक बनी रही। कभी वे कन्धे से कन्धा भिड़ा कर और कदम से कदम मिला कर आगे बढ़े। जय–पराजय, आशा–निराशा, दुःख–सुख, हानि–लाभ के झूले में साथ–साथ झूले। कभी नारी ने पुरुष के ऊपर अपने वर्चस्व की छाप छोड़ी और कभी पुरुष नारी जीवन का नियन्ता बना। नये युग के थपेड़ों से प्रभावित नारी पुनः अपनी मुक्ति यात्रा पर चल निकलने के लिये कटिबद्ध हो रही है। इस लम्बे समय अन्तराल में नारी पुरुष की सापेक्ष

भूमिका परिस्थितियों के दबाब तथा उनके पारस्परिक शारीरिक और मानसिक द्वन्द्व द्वारा निर्धारित तथा नियन्त्रित होती रही। ऐसा राजनीति सहित सभी क्षेत्रों में हुआ। अध्ययन समग्रता में ही करना समीचीन है। पौराणिक, महाकाव्य युगीन नारी के राजनीतिक कार्य–कलापों को आधुनिक नारी आन्दोलनों–संघर्षों के सन्दर्भ तथा तारतम्य में ही समझा जा सकता हैं इसी प्रकार आधुनिक नारी की क्रिया–कलापों को भलीभांति हृदयंगम करने के लिये प्राचीन नारी की भूमिका का अध्ययन करना परम आवश्यक है।

दो भिन्न व्यवस्थाओं का उद्‌भव :

महाकाव्यों के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। भू संरचना तथा जलवायु की भिन्नता के कारण सम्पूर्ण संसार में एक समान उद्‌भिज तथा जन्तु नहीं पाये जाते, उनमें पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता ने मानव विकास की धारा को पर्याप्त प्रभावित किया। महाकाव्यों, विशेष कर रामायण के विवरणों से प्रतीत होता है कि उस काल में गंगा की उत्तरी तथा पूर्वी घाटी घने जंगलों से आच्छादित दलदली भूमि थी। जो कृषि के लिये अनुपयुक्त थी।[1] महिष (भैस) तथा हाथी को छोड़ कर किसी भी प्रकार के उपयोगी तथा पालतू पशु भी नहीं पाये जाते थे। हाथी तथा महिष भी तब तक पालतू नहीं बनाये जा सके थे।[2] बिन्ध्य उपत्यका (घाटी) तथा सम्पूर्ण दक्षिणा पथ सूखा, कटीली झाड़ियों तथा छोटे–छोटे वृक्षों से ढका पथरीला क्षेत्र था। साल भर जल से भरी रहने वाली नदियाँ भी नहीं थीं। यहाँ भी दुधारु पशुओं का अभाव था। यही कारण था कि हम पाते हैं कि रामायण कालीन राक्षस, गृद्ध आदि टोटमीय जातियां आखेट युग में रहती

---

(1) ताड़का का विवरण– रामा. अरण्य. 11, 21

(2) महाभारत. भाद्रकृष्ण षष्टी को हरछट व्रत में बिना जोता गया अन्न खाने का विधान है। भैंस का दूध सेवन किया जा सकता है, गाय का नहीं। जब भैंस पालतू नहीं बनाई जा सकी थी, यह उस समय की अवशेष परम्परा है।

थीं।[3] वानर तथा ऋक्ष जनगण तो आहार एकत्रण में ही थे, आखेट युग से भी दूर।[4] इन्हें न बाड़ी कृषि का ज्ञान था और न पशु पालन का । ये समाज न मातृसत्तात्मक थे न पितृसत्तात्मक थे, नारी पुरुष में पूरी समानता थी।[5]

कालान्तर में दल–दल सूखने, पर्याप्त जल आपूर्ति वाले नदियों–झीलों के समीप नारियों ने बाड़ी कृषि का प्रारम्भ किया। इस परिघटना ने मातृसत्तात्मक समाज की नींव डाली। पालतू पशुओं के अभाव में ये जनगण पशुपालन तथा पशु–शक्ति पर आधारित विस्तृत कृषि युग में प्रवेश नहीं कर सके। जब राम का इनसे सम्पर्क हुआ था, उस समय ये जन गण इसी अवस्था में थे।[6]

पन्द्रहवीं शती के अन्त तथा सोलहवीं शती के प्रारम्भ में जब योरोपवासी अमरीकी महाद्वीपों में पहुँचे थे तो उन्हें वहाँ के रेड इण्डियन निवासी और माया सभ्यता के लोग बाड़ी कृषि की अवस्था में ही मिले थे। वहां पालने योग्य पशु पाये ही नहीं जाते थे। इसी से वह पशुपालन युग में प्रवेश नहीं कर सके थे। उनका समाज मातृसत्तात्मक अवस्था में ही था।[7]

इसके विपरीत गंगा के पूर्व और प्राचीन सरस्वती उपत्यका से लेकर सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारत सर–आमू, दजला–फरात तथा वोल्गा की घाटियों में पालने योग्य तथा दुधारु पशुओं की प्रचुरता थी। जलवायु तथा भू संरचना भी पशुपालन एवं कृषि के लिये

---

(3) रामा. किष्किन्धा, गिद्धों (जटायु–सम्पाती) का विवरण लंका. नरभक्षी राक्षस. उत्तर लवणासुर प्रसंग; महा.

(4) रामा. किष्किन्धा, वानरों–ऋक्षों का विवरण; लंका–अशोक वाटिका में हनुमान का व्यवहार, सीता खोज कर लौटे वानरों ने सुग्रीव के उद्यान को फल खाकर उजाड़ दिया था।

(5) महाकाव्यों में इन जनगणों में जो पुरुष प्रधानता मिलती है वह बाद के पुरुष प्रधान समाज का प्रभाव है।

(6) रामा. किष्किन्धा. नगरी (गुफा) का वर्णन–पशुपालन तथा कृषि का कोई संकेत नहीं मिलता। खच्चर जुते रावण के रथ का वर्णन बाद का जोड़ा प्रक्षिप्त अंश हैं।

(7) मार्क्स–ऐंग्लिस : संकलित रचनायें, भाग 3, पृ. 245

उपयुक्त थी।[8] इसी से वैदिक कालीन तथा महाकाव्यों के नायक पशुपालन युग में सहज ही प्रवेश कर गये। और महाभारत युद्ध के बाद के काल में पशुशक्ति पर आधारित कृषि व्यवस्था की नींव डाल सके।[9] इन परिस्थितियों से प्रेरित इन क्षेत्रों के जनगण पितृसत्तात्मक समाज में रूपान्तरित हो गये। इस प्रकार भारत में पितृ प्रधान तथा मातृ प्रधान व्यवस्थायें अस्तित्व में आई और कुछ काल तक साथ–साथ चलती रहीं।

मातृ–पितृ प्रधान समाज से सम्पर्क तथा मातृ प्रधान समाज का पराभव :

महाकाव्यों के काल में दोनों प्रकार के समाज एक दूसरे के सम्पर्क में आये। परिस्थितियों के दबाव के चलते लम्बे समय अंतराल में मातृ प्रधान समाज धीरे–धीरे पितृ प्रधान समाज में रूपान्तरित होते गये अथवा समाप्त होते गये। यह प्रक्रिया दो रूपों में सम्पन्न हुयी। प्रथम, डैमिक प्रसार तथा द्वितीय, सम्पर्क प्रसार। सामान्यतः यह दोनों प्रक्रियायें साथ–साथ चलती हैं।[10]

डैमिक प्रसार :

इस प्रक्रिया में शक्तिशाली–विजयी जाति पराजित जाति का रक्त रंजित

---

(8) इन क्षेत्रों में नदियों द्वारा लाई उर्वर पडुआ मिट्टी की मोटी तह जमी है। वर्षा सामान्यतः 35–45 से.मी. वार्षिक होती है। शीतोष्ण कटिबन्धीय सामान्य ताप रहता है। साल भर बहने वाली नदियों का जाल बिछा है इससे यहां विस्तृत घास के मैदान पाये जाते हैं जो पशु पालन तथा कृषि के लिये उपयुक्त क्षेत्र हैं। डी.डी. कोसाम्बी : एन इन्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन हिस्ट्री–आर्यो के मूल स्थान के सन्दर्भ में

(9) कृष्ण द्वारा पशु पालन–परिब्राजक युग के देवता इन्द्र की पूजा का निषेद तथा कृषि स्थायित्व के प्रतीक गोवर्धन पूजा का विधान : कृष्ण–अर्जुन द्वारा खाण्डव वन दहन (कृषि हेतु भूमि प्राप्त करना) अथर्ववेद में कृषि सम्पन्न परीक्षित के राज्य का वर्णन इसके प्रमाण हैं।

(10) लोक लहर, 28 जनवरी 2001, पृ. 15

संघर्ष के द्वारा लगभग सफाया कर देती है, विजित क्षेत्र पर अधिकार कर लेती हैं। राम द्वारा लंका के राक्षसों तथा जनमेजय द्वारा नागों का लगभग समूल उच्छेदन और शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का मथुरा क्षेत्र से उन्मूलन डैमिक प्रसार के उदाहरण हैं।[11]

सम्पर्क प्रसार :

जब दो भिन्न प्रकार की व्यवस्थायें सम्पर्क में आतीं हैं तो ऊँची तथा विकसिततर व्यवस्था से प्रभावित होकर पिछड़ी व्यवस्था अपने को स्वतः उच्च व्यवस्था में ढाल लेती हैं। राम के सम्पर्क में आने पर आहार एकत्रक वानरों ने सुग्रीव के नेतृत्व में धीरे-धीरे पशु पालन कृषि सभ्यता अंगीकार कर ली थी। अगस्त ऋषि के प्रभाव से आखेटयुगीन वातापि-इल्वल बाड़ी कृषि के पशुपालक बन गये गये।[12]

इन दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं के चलते भारत के मातृसत्तात्मक समाज पितृसत्तात्मक समाजों में समा गये। यद्यपि मातृ सत्ता के कुछ अवशेष अभी भी भारत में पाये जाते हैं।[13] मातृसत्ता का यह विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय थी।[14]

नारी की युग परिवर्तनकारी भूमिका :

रूपान्तरण के लम्बे समय अन्तराल में नारी विभिन्न रूपों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रही। अध्याय तीन में स्पष्ट किया जा चुका है कि आहार एकत्रण युग के

---

(11) योरोपीयों द्वारा अमरीका के रेड इण्डियनों, आस्ट्रेलिया के नीग्राइटों तथा न्यूजीलैण्ड के मवालियों का उन्मूलन भी डैमिक प्रसार के उदाहरण हैं।

(12) अफ्रीका के नीग्रो कबीलाई, ऐशिया की भारतीय तथा चीनी सामन्ती व्यवस्थायें योरोपीय सम्पर्क से पूंजीवादी-समाजवादी व्यवस्थाओं में बदली।

(13) केरल में पुत्र के स्थान पर भांजे को उत्तराधिकार मिलता है। यह मातृ सत्ता का अवशेष है।

(14) मार्क्स-ऐंगिल्स : संकलित रचनायें, भाग 3, पृ. 206

मानव को आखेट युग में प्रवेश दिलाने में अग्नि का आविष्कार निर्णायक घटना थी। यद्यपि अग्नि के अन्वेषण का श्रेय पुरुषों को है[15] किन्तु उसे निरन्तर जलाये और सुरक्षित रखने का दायित्व नारी ने ही अपने सुदृढ़ स्कन्धों पर उठाया था।[16]

आखेट को सुगम बनाने तथा बाद में जातीय एवं व्यक्तिगत सुरक्षा हेतु आयुधों का निर्माण नारियों ने ही किया।[17] और मानव जाति को प्रारम्भिक कृषि तथा मातृसत्ता के युग में प्रवेश दिलाया। आखेट के दौरान पकड़े गये पशुओं से भविष्य के लिये मांस प्राप्त करने के लिये उन्हें बन्दी बनाकर रखा जाता था। उन्हीं में से दुधारु पशुओं से दुग्ध प्राप्त करने की कला भी नारी ने ही खोजी थी इसी से उसे अश्वपति, गोमती, दुदना, दुहिता तथा मातृ (माप कर वितरण करने वाली) को उपाधियाँ मिली थीं।[18] उसी ने पशुपालन युग का सूत्रपात किया था।

इन आविष्कारों–प्राविधियों (बाड़ी कृषि और प्रारम्भिक पशु पालन) ने उत्पाद में पर्याप्त वृद्धि की। इसी बढ़ते उत्पाद ने मानव जाति को अतिरिक्त उत्पादन के युग में प्रवेश दिलाया। बाद में इसी अतिरिक्त उत्पाद ने दास प्रथा तथा राज्य व्यवस्था का सूत्रपात किया।

महाभारत के अनुसार दास प्रथा के सूत्रपात का श्रेय (?) भी महिलाओं को ही है। व्यवस्था चाहे मातृसत्तात्मक हो या पितृसत्तात्मक नारी ने ही नारी को दासत्व के पाश में जकड़ा। कभी छल–प्रपंच का सहारा लेकर [19] कभी बौद्धिक श्रेष्ठता के बल पर।[20] महान आश्चर्य है दास प्रथा की जननी नारी, न तो राज्य की प्रमुख शासिका ही

(15) अंगिरा आदि.
(16) नर्मदा–सुदर्शना
(17) जया–सुप्रभा
(18) दुहिता तथा मातृ जैसे नाम
(19) कद्रू और विनता प्रकरण–महाभारत
(20) देवयानी–शर्मिष्ठा प्रकरण–महाभारत

बन सकी। यदि कभी बनी भी हो तो पुरुष प्रधान भारतीय समाज ने ऐसा कोई भी साक्ष्य सुरक्षित नहीं छोड़ा। बाद में इस्लामी शासन काल में रजिया सुल्ताना और चाँद बीबी के उदाहरण अवश्य मिलते हैं जब नारी अपने अधिकार से शासनाध्यक्षा बनी।

धीरे–धीरे प्रारम्भिक पशुपालन ने विकसित होकर विस्तृत और व्यापक पशुपालन का रूप ग्रहण किया और बाड़ी कृषि पशुशक्ति पर आधारित उन्नत कृषि में रूपान्तरित हुयी। परिव्राजक जन एक क्षेत्र विशेष में बसने वाले जनपदीय राज्य बने। अतिरिक्त उत्पाद के अम्बार बढ़ने लगे, राज्य सभा सुदृढ़ और केन्द्रोन्मुखी होने लगी। शिल्प उद्योग पनपे। व्यापार ने लम्बी छलांगें लगायीं। इन परिघटनाओं से प्रभावित समाज में पुरुष प्रधानता स्थापित हो गयी थी फिर भी नारी श्रम और ज्ञान का मान–सम्मान था। दुहिता रूप में नारी दूध और दुग्ध उत्पाद की निर्मात्री थी। मातृ रूप में वह आवश्यक सामग्री का उचित वितरण करती थीं।[21] आवश्यकता पड़ने पर रणक्षेत्र में भी उतरती थी।[22] राजनीति में भी प्रभावी भूमिका निभाती थी।[23] शिल्प उद्योग तो बहुत कुछ नारी के हाथों में था।[24] ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में भी नारी पुरुष के समकक्ष थी।[25]

महाकाव्यों, विशेष कर महाभारत के अनुसार नारी की भिन्न–भिन्न भूमिकायें, आखेट युग से सामन्ती युग (500 ई.) तक बनती–बिगड़ती रहीं। इसी काल में महाकाव्यों को वर्तमान स्थायी रूप मिला।

---

(21) पुत्री को दुहिता कहा जाता था। 'दुहिता' का अर्थ दूध दुहने वाली होता था। सामाजिक उत्पाद को सभी सदस्यों में आवश्यकतानुसार ज्येष्ठ महिलायें ही वितरित करती थी। 'मातृ' शब्द 'माँ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'नापना' है। इसी से तौलने की इकाई 'मन' बना है। नारी को अश्ववती गोमती एवं दुहना अर्थात् समत्व पशुधन की स्वामिनी कहा जाता था। ऋ. 7.31.7

(22) कैकई ने राजा दशरथ के प्राण बचाये थे।

(23) कैकई, तारा, द्रोपदी की राजनीति में प्रभावी भूमिका रही थी।

(24) वस्त्र उद्योग पर नारी का लगभग एकाधिकार था– अथर्व. 6.138.5–7, 48.1; 14.1.45,14.2.51; सीता ने मृगछाला बनाने के लिये राम से मृग का आखेट करने को कहा था।

(25) गार्गी, ममता, विश्ववारा अपाला, घोषा एवं वांक् जैसी नारियां वेद मंत्रों की द्रष्टा थीं।

सन् 500 ई. से 1825 ई. तक भारत अन्ध जड़ युग की लम्बी शीत निद्रा में सोया पड़ा रहा। महाकाव्यों के कलरव से यह युग बाहर है। इस काल में नारी भी सामन्ती उत्पीड़न की चक्की में पिसती रही। नारी जीवन में कोई बदलाव नहीं आया। इस युग में केवल नारी का ही शोषण नहीं होता रहा, पुरुष को भी वर्ण–जाति व्यवस्था और सामन्ती शोषण और दमन का सामना करना पड़ा। उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ से भारत पर योरोपीय पूंजीवाद का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। शीत निद्रा भंग होने लगी पुराने समाज में नव जीवन का संचार हुआ। प्रगति प्रवाह की अवरुद्ध धारा पुनः प्रवाहित होने लगी। नारी भी भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य की ओर चल निकली।

औद्योगिक क्रान्ति और नारी चेतना :

अठारहवी. शती के मध्य से योरोप में औद्योगिक क्रान्ति ने अंगड़ाई लेनी प्रारम्भ की। उससे प्रभावित होने में भारत को लगभग सौ वर्ष लगे। उन्नीसवीं शती के मध्य से ब्रिटिश पूंजीवादी राज्य ने भारतीय सामन्ती व्यवस्था को तोड़ना शुरु किया।(26) उसी के साथ नारी चेतना के द्वार भी उन्मुक्त होने लगे। योरोप की औद्योगिक व्यवस्था ने भारत के गृह उद्योग धन्धे नष्ट करने शुरु किये।(27) नारियों में बेकारी जनित छटपटाहट के लक्षण दिखाई देने लगे। विवशता में नारी घर और गृह उद्योगों की सुरक्षा प्राचीर से बाहर निकली। धीरे–धीरे वह उस मार्ग की ओर उन्मुक्त हुयी जो संगठित

---

(26) लॉड वैलेजली की सहायता संन्धि से लेकर लार्ड डलहौजी की हड़पनीति तक एक–एक कर देशी सामन्ती रजबाड़े नष्ट कर अंग्रेजी राज्य में मिलाये गये। नर बलि, सती प्रथा, ठगी, पिण्डारियों की लूट समाप्त हो गयी। लार्ड मैकाले ने नई पूंजीवादी शिक्षा प्रणाली तथा भारतीय दण्ड संहिता एवं पाश्चात्य न्याय व्यवस्था प्रारम्भ की।

(27) भारत जो कभी कपड़े का निर्यातक था, 1815 के बाद कपड़े का आयात करने लगा था– पी. पाब्लोव भारत का पूंजीवाद में संक्रमण, ऐतिहासिक पूर्वाधार, पृ. 337; सूती वस्त्र, रेशमी और ऊनी सामान, लोहा, बर्तन, कांच तथा कागज के उद्योग नष्ट कर दिये गये और शिल्पी बरबाद हो गये। आर. पामदत्त : इण्डिया टुडे एण्ड टुमारो, पृ. 48

उद्योगों की ओर जाता था। नये युग के अनुरूप ढालने के लिये नारी शिक्षा की ओर भी थोड़ा बहुत ध्यान दिया जाने लगा। नारी अधिकारों के प्रति सचेत होने लगी। उसके संगठन बनने लगे। यह एक विश्व व्यापी परिघटना थी।[28]

राजनीतिक क्षेत्र में नारी के बढ़ते चरण :

राष्ट्रीय मुक्ति अभियानों में महिलायें पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ाकर संघर्ष क्षेत्र में उतरीं[29] लोकतंत्र की बढ़ती उतांग तरंग पर सवार होकर नारी ने मताधिकार प्राप्त करने के आन्दोलन प्रारम्भ किये। धीरे–धीरे उन्हें सफलता भी मिली।[30] नारी राजनीतिक चेतना की ज्वाल शिखा का प्रकाश विकसित तथा विकासशील देशों को ही आलोकित नहीं कर रहा है, कट्टर मजहबी इस्लामी राज्यों की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर रहा है।[31] राजनीति के क्षेत्र के साथ–साथ प्रशासनिक, सैनिक, अंतरिक्ष तथा समाज कल्याण

---

(28) काम के घण्टे घटाने तथा उचित पारिमिक प्राप्त करने के लिये 8 मार्च 1857 को संयुक्त राज्य अमेरिका की महिलाओं ने पहला कदम उठाया। लम्बे संघर्ष के उपरान्त उन्हें सफलता मिली। 8 मार्च 1908 को काम के घण्टे 6 से घटाकर 10 कर दिये गये और मजदूरी में भी बृद्धि हुयी। कोपिन हेगिन सोशलिस्ट कान्फ्रेस के प्रस्ताव के द्वारा 8 मार्च 1911 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। दैनिक जागरण, कानपुर, 27 अगस्त 1997

(29) मैडम कामा, श्रीमती सरोजनी नाइडू, चारुलता, दुर्गा भाभी, अरुणा आसफअली, विजय लक्ष्मी पंडित, आजाद हिन्द सेना की सेनानी कैप्टेन लक्ष्मी को कौन भूल सकता है। तैलंगाना सशस्त्र संघर्ष में सूर्यवती, कमला स्वराज्यम् तथा जमालुन्निसां जैसी वीरांगनाओं की भूमिका अविस्मरणीय है। डॉ. सुरजीत कौर : नारी के बदलते तेवर, पार्टी जीवन, 16–12–2000, पृ. 17, 18

(30) 1906 में में फिनलैण्ड तथा 1920 में संयुक्त राज्य अमरीका की महिलाओं को, 1928 में ब्रिटेन की, 1936 में सोवियत महिलाओं को वयस्क मताधिकार मिला। द्वितीय महायुद्ध के बाद 1947 में फ्रांस और 1947 में जापान की महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। भारत के मद्रास प्रांत में 1921 में तथा अन्य प्रान्तों में 1926 में महिलाओं को सीमित मताधिकार प्राप्त हुआ। दैनिक जागरण, कानपुर, 3 मई, 2000 पृ. 14
1950 में भारत में वयस्क मताधिकार लागू किया गया। भारतीय संविधान के तिहत्तरवें तथा चौहत्तरवें संशोधन के द्वारा पंचायतों तथा स्थानीय नगर संस्थाओं में महिला आरक्षण व्यवस्था लागू की गयी।

(31) जार्डन में संसद में महिला आरक्षण की मांग उठने लगी है। ईराक में बुर्कानशीं महिलायें सेना में भर्ती होने के लिये आगे आ रही हैं। ईरान में महिला न्यायाधीशों की नियुक्ति हाने लगी हैं। सिडनी ओलम्पिक में भाग लेने के लिये इस्लामी बुर्काधारी देश बहरीन ने दो, यमन ने एक तथा ओमान ने छः महिला खिलाड़ियों को भेजा था। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 4 सितम्बर 2000, पृ. 12

जैसे विविध क्षेत्रों में भी नारियां आगे आ रही हैं।[32]

नारी मुक्ति मार्ग के अवरोध :

इतने पर भी महिला मुक्ति तथा प्रगति का मार्ग सीधा, सपाट और निष्कंटक नहीं हैं। निहित स्वार्थियों, कट्टरपंथियों तथा प्रगति विरोधियों द्वारा बिछाई गयी भूमिगत सुरंगों के विस्फोट से नारी यदाकदा लहूलुहान होती रहती है।[33]

महिला विधवा आश्रम[34] तथा देवदासियों को पालते देव स्थान[35] नारी शोषण के ढके–मुदे अड्डे हैं। कन्या शिशु हत्या तथा नारी भ्रूण हत्या रोके नही रुक रही हैं।[36] स्त्री पुरुष अनुपात में घातक अन्तर आता जा रहा है। सती प्रथा को पुनः महिमा मण्डित करने के प्रयास किये जा रहे हैं।[37]

अर्न्तजातीय विवाहों को हतोत्साहित किया जा रहा है। डायन होने के नाम पर नारियों की हत्या करना तथा उन्हें अपमानित करना सामान्य घटना है।[38] परम्परा,

---

(32) सोवियत संघ की तैरेस्कोवा प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री बनी। ले. कर्नल एलीन कालिन्स अंतरिक्ष अभियान दल की पहली महिला नेत्री बनी, कल्पना चावला पहली भारतीय महिला अंतरिक्ष यात्री बनी। श्री लंका में 33 महिलायें पाइलेट बनीं। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 20 जून 199; जागरण कानपुर, 30 दिसम्बर 1998। बिछेन्द्री पाल ने प्रथम ऐवरेस्ट विजेता होने का गौरव प्राप्त किया। किरन बेदी तो प्रसिद्ध हैं ही।

(33) भारतीय संसद तथा राज्यों के विधान मण्डलों में येन–केन–प्रकारेण महिला आरक्षण को टाला जा रहा हैं महिलाओं के साथ अभद्र छेड़–छाड़ सामान्य बात है। सहकर्मियों तथा उच्च अधिकारियों द्वारा महिला सहकर्मियों के यौन शोषण के घिनौने प्रयास प्रायः देखे सुने जा रहे हैं। मार्गों, विश्वविद्यालयों–महाविद्यालयों के परिसरों में नवधनाड्य गुण्डों द्वारा छात्राओं को वाहनों से कुचलना, अपहरण करना तथा बलात्कार के प्रयत्न ऐसे ही अवरोध है। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 20 जून 1999

(34) राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 14 अगस्त 2000 पृ. 1

(35) स्वतंत्रोत्तर भारत के 40 सालों में 30 लाख बालिकायें देवदासियां बनाई जा चुकी हैं। अमर उजाला, कानपुर, 30 जुलाई 2000 पृ. 4

(36) राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ 17 मई 1997

(37) राजस्थान की रूपकुंअर तथा महोबा की चरन शाह सती प्रकरण अभी भी जन मानस से हटे नहीं हैं विधवा को जीते जी नरक में धकेल दिया जाता है। उसकी प्रतिरोध शक्ति समूल नष्ट कर दी जाती है। अमर उजाला, कानपुर 1 जून 2000 पु. 12

(38) राष्ट्रीय सहारा लखनऊ, 20 जून 1999

धर्म, संस्कृति की दुहाई देकर कुप्रथाओं को दृढ़ करने के प्रयास किये जाते हैं।[39] समाज सुधार के नाम पर रोड़े अटकाये जाते हैं,[40] मौत के फतवे जारी किये जा रहे हैं।[41] नारी अधिकारों के लिये संघर्ष करने वाले संगठनों को 'दमित इच्छाओं को खुलकर तृप्ति करने वाले, कहकर लांछित किया जा रहा है। देहवाद, यौनवाद तथा अंग प्रदर्शन को ही फेमनिस्ट मूवमेण्ट कहकर कुख्यात करने के षड़यन्त्र किये जा रहे हैं।[42]

नारी यौन उत्पीड़न के लिये उसकी वेश–भूषा, रहन–सहन को उत्तरदायी ठहराया जाता है। पारिवारिक विघटन, पति–पत्नी के बीच असन्तुलन, बढ़ती तलाक की घटनाओं, विवाह मुक्त जीवन का सम्पूर्ण दोष नारी मुक्ति आन्दोलनों के सर मढ़ा जा रहा हैं दोषपूर्ण तथा अनैतिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न समस्याओं का असम्भव हल व्यक्तिगत तथा पारिवारिक स्तर पर किये जाने का ढोंग रचा जा रहा है। साथ ही नारी को दोषी भी ठहराया जा रहा है।[43]

स्थानीय निकायों में आरक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत निर्वाचित पदाधिकारियों को अक्षम तथा परालम्बी प्रमाणित करने के प्रयास सहज ही देखे जा सकते हैं।[44] उनके विरुद्ध हिंसात्मक गुण्डागर्दी भी की जाती है।[45] भारत की केन्द्रीय तथा राज्यों की विधायिकाओं में नारी का प्रतिनिधित्व घटता जाता है।[45.1]

---

(39) श्रीलंका में महिलाओं को बौद्ध भिक्षुणी बनने से रोका जाता है। जागरण कानपुर 30 दिसम्बर, 1998 राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ 31 दिसम्बर 997, हिन्दुस्तान लखनऊ, 1 जुलाई 1997

(40) फायर तथा वाटर फिल्म निर्माण के शान्तिपूर्ण विरोध के स्थान पर हिंसक प्रदर्शन आयोजित किये जाते हैं सरकार का मौन समर्थन रहता है। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 24 जून 2000

(41) बंगलादेश में तसलीमा नसरीन को मौत के फतवे से दो चार होना पड़ा। पाकिस्तान में तहमीना दुर्रानी को धमकियां दी गयीं शिक्षिकाओं तथा छात्राओं को बुर्का पहनना अनिवार्य कर दिया गया है। अफगानिस्तान में तालिबान शासकों ने महिला शिक्षण संस्थाओं को बन्द कर दिया है। जागरण, कानपुर, 30 दिसम्बर 1998

(42) काहिरा जनसंख्या सम्मेलन 1994 तथा बीजिंग महिला सम्मेलन 1995 में इस प्रकार गूंज सुनाई दी थी। हिन्दुस्तान, लखनऊ, 1 जुलाई 1997

(43) कथन, नई दिल्ली, जुलाई–सितम्बर, 2000 पृ. 57

(44) अमर उजाला, कानपुर, 8 मार्च 2000 पृ. 4

उत्तर आधुनिकता तथा उत्तर औद्योगिक व्यवस्था का नारी विरोध

नवपूंजी–व्यवस्था से उत्पन्न दशाओं का परिणाम उत्तर आधुनिकता तथा उत्तर औद्योगिकता है। यह व्यवस्था मानव समेत हर वस्तु की उपयोगिता को विनियम मूल्य में बदलती है। मानव की गरिमा का स्थान वस्तु पूजा ने ले रखा हैं।[46]

यह समाज नारी और पुरुष दोनों को यंत्रवत बनाने के लिये उसका अमानवीयकरण कर रहा है, उसे प्रसंस्कारित करता जा रहा है। शिक्षा मंत्रालय का नाम बदलकर मानव संसाधन मंत्रालय कर दिया गया है। साथ ही इतिहास तथा विचारधारा के अन्त का प्रतिगामी उद्घोष किया जा रहा है सीधा–सीधा अभिप्राय है कि मानव उद्योग, आन्दोलन तथा क्रान्ति सभी व्यर्थ है, विचारों से कुछ नहीं होता, जो जैसा है वैसा ही रहेगा। अन्याय–विषमता हमेशा से रही है हमेशा रहेगी। नारी द्वितीय श्रेणी की, भोग्या, अबला रही है, वैसी ही रहेगी। क्या वास्तव में ऐसा है?

नहीं, इतिहास अनादि, अनन्त है, कर्म और विचार की अनन्त श्रंखला है। मानव श्रम और अध्यवसाय काल को इतिहास का रूप देता है।[47] नव पूंजी का दैत्य

---

(45) 15 अगस्त 1998 को महाराष्ट्र के ठाणे जिले में झुग्गी क्षेत्र में सार्वजनिक नल लगवाने का प्रयास करने वाली पार्षद मीना को निहित स्वार्थियों को जीवित जला दिया था। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 20 जून 1999। उड़ीसा की पूर्व मुख्यमंत्री नन्दनी सतपथी को युवती होने के अपराध में मुख्यमंत्री पद से हाथ धोना पड़ा था। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के भी चरित्र हनन के प्रयास किये गये थे। साध्वी उमा भारती के चरित्र पर भी उंगलियां उठाई गयी थीं। बिहार की मुख्यमंत्री राबड़ी देवी को भी निरक्षर कठपुतली मुख्यमंत्री कहकर उपहास का पात्र बनाया जाता है। यह उस देश में हो रहा है जहाँ के सफलतम सम्राट और राजा–महाराजा निरक्षर या लगभग निरक्षर थे। मुगल सम्राट अकबर, शेरशाह सूरी, शिवाजी, हैदरअली महाराज रणजीत सिंह सभी निरक्षर किन्तु सफलतम शासक थे। इसी प्रकार विधानमण्डलों तथा संसद में महिलाओं को आरक्षण न देना लोकतंत्र की खामी है। राज्यसभा की उपाध्यक्ष नजमा हेपतुल्ला। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ 31 अगस्त 2000 पृ. 7। यह सब नारी के विरुद्ध खुले या ढके हिंसा प्रदर्शन के उदाहरण हैं।

(45.1) रंगाराव : पार्लामेन्टरी एफेयरस मंथली, वोल्यूम 12, जनवरी 1995, पृ. 5; (डिक्लाइनिंग ट्रेण्ड इन वूमन रिप्रजेण्टेशन इन इण्डियन लेजिस्टलेचरस)

(46) समकालीन सोच, मई– अगस्त 2000, पृ. 15

(47) अमर उजाला, कानपुर, 8 अप्रेल, 2000

निजीकरण की आड़ में नारी की सामाजिक सुविधाओं को हड़पने की घात लगाये हैं।

नारी को दिग्भ्रमित करने के उद्देश्य से पुरुष जाति के रूप में उसके सामने एक काल्पनिक तथा भ्रमात्मक शत्रु खड़ा कर दिया गया है। प्रयत्न किये जा रहे हैं कि नारी की समस्त मुक्ति ऊर्जा, अपने वास्तविक शत्रु दोषपूर्ण, शोषक व्यवस्था को मिटाने के स्थान पर काल्पनिक शत्रु से लड़ने में व्यर्थ चली जाये। दुखद है कि बहुत से नारीवादी संगठन इस भ्रम के शिकार हो रहे हैं।

नारी मुक्ति प्रयास :

शोषक वर्गों तथा उनके स्वार्थों की पालकी ढोने वाले तथा कथित बुद्धिजीवियों द्वारा फैलाये, भ्रम, भय, आतंक तथा अज्ञानता–अंधविश्वास के विरुद्ध आधुनिक नारी दृढ़तापूर्वक कमर कस रही है। आज की नारी पुरानी कालातीत, प्रतिगामी, रूढ़ियों को तोड़ती हुई खुले मैदान में उतर रही है।[48] उसने घूंघट को उलट दिया है, जातीय बंधनों पर आरी चलाने लगी है, विधवा विवाह होने लगे हैं। शिक्षित नारी धर्म–मजहब की सड़ी–गली मान्यताओं–विश्वासों, आस्थाओं की नई वैज्ञानिक व्याख्या करने की मांग करने लगी है।[49]

सांगठनिक शक्ति के महत्व को समझते हुये नारी अपने संगठन दृढ़ कर रही

---

(48) राजस्थान जैसे रुढ़िग्रस्त राज्य के बस्सी कस्बे में आयोजित विधवा सम्मेलन में देश भर से आई विधवाओं ने भाग लिया था। मेंहदी रचाकर और चूड़ियाँ पहनकर खुले विद्रोह का ऐलान किया था।
राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 4, 9, 2000, पृ. 12

(49) पाकिस्तान मानवाधिकार आयोग की अध्यक्षा असमां जहांगीर ने नारी शोषण को वैधता प्रदान करने वाले धर्म की भूमिका को उजागर किया। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 31, 12, 1997
मुम्बई के सेण्ट जेवियर्स कालेज के इस्लामी अध्ययन विभाग की अध्यक्ष प्रो. जीनत शौकतअली ने कुरान शरीफ के पुनरोद्धार पर बल दिया।
जागरण, कानपुर, 27 अगस्त 1997

है और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से अपनी आवाज उठा रही है।[50] मैक्सिको सम्मेलन 1975, कोपिन हेगन सम्मेलन 1980, नैरोबी सम्मेलन 1985 तथा बीजिंग सम्मेलन 1995 से प्रमाणित होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज नारी की समस्याओं को मान्यता दे रहा है।[51]

पूंजीवाद का अंतर्विरोध :

इस प्रकाश हम देखते हैं कि आधुनिक परिवेश में दो विपरीत दिशाओं से चलने वाली हवा चल रही है। ऊष्ण और ठण्डे जल की धारायें साथ–साथ प्रवाहित हो रहीं है जिनके प्रभाव से भ्रम का कुहरा, अंधेरा फैला रहा है जिससे नारी प्रगति का पोत निहित स्वार्थियों के जलमग्न शैलखण्ड या हिम शैलों से टकरा कर ध्वस्त हो जाये। यह परिघटना पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्विरोध के कारण हो रही है। एक ओर पूंजीवाद अपने स्वतंत्र विकास के लिये प्रचुर श्रम शक्ति को उन्मुक्त करता है, नारी को पुरुष के साथ–साथ श्रम बाजार में उतारता है, नारी की स्वतंत्रता तथा शिक्षा को प्रोत्साहित करता है, सामन्ती श्रम गतिहीनता को तोड़ता है। संक्षेप में सम्पूर्ण सामन्ती व्यवस्था की नींव में

---

(50) धार्मिक सहस्त्राब्दिक सम्मेलन में पुरुष मानसिकता के विरुद्ध बराबरी की भागीदारी हेतु महिला प्रतिनिधियों ने अपनी अलग धार्मिक परिषद गठन करने का निर्णय लिया था। राष्ट्रीय सहारा लखनऊ, 2 सितम्बर 2000, पृ. 7

(51) गोपाल सिंह (सं.) : साउथ एशिया, डेमोक्रेसी, डिस्कोण्टेण्ट एण्ड सुसाइटल कोन्फिलक्टस, पृ. 413

(52) फ्रांस की सुप्रसिद्ध क्रान्ति ने सामन्तवाद के विरुद्ध समता, स्वतंत्रता तथा भ्रातृत्व के नारे लगाये थे। सामन्ती धर्म पर प्रहार किया था। योरोप में जैसे–जैसे पूंजीवादी क्रान्ति आगे बढ़ी वैसे–वैसे सामन्तवाद धराशायी होता गया। और तो और योरोप का 'बीमार आदमी' कहा जाने वाला कट्टर इस्लामी देश, खलीफा का गढ़ तुर्की भी पूंजीवादी क्रान्ति से धराशायी हो गया। मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में प्रतिक्रियावाद का गढ़–खिलाफत नष्ट कर दी गयी। बुर्का प्रथा, दाढ़ी मूंछ, तथा कथित तुर्की टोपी चलन बाहर उठाते हुये सामन्तवाद के आधार दास प्रथा को समाप्त कर दिया। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है भारत में अंगेजी राज ने अपने प्रारम्भिक चरण में सामन्तवाद की जड़ पर प्रहार किया था। सामन्तवाद का उन्मूलन पूंजीवाद की मौलिक प्रवृत्ति है।

बारूद का पलीता लगाता है।[52] दूसरी ओर समाजवादी क्रान्ति से भयाक्रान्त पूंजीवादी व्यवस्था आत्मरक्षा में समाजवाद को रोकने तथा नष्ट करने के लिये, एक से दो भले की नीति को चरितार्थ करता हुआ मरणासन्न सामन्तवाद से मित्रता का हाथ मिलाता है। उसकी कालातीत धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों को प्राश्रय देता है जिनकी आड़ में नारी मुक्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है।[53] पूंजीवाद–सामन्तवाद का समाजवाद के साथ–साथ नारी मुक्ति के विरुद्ध भी यह एक अपवित्र गठबन्धन है।

धीरे–धीरे नारी अब इस संजाल को समझती जा रही है। विभिन्न क्षेत्रों में उसकी संगठित संस्थायें भी अस्तित्व में आ रही हैं।[54] धर्म के वर्जित क्षेत्र में नारियां अब प्रवेश पा रही हैं, यद्यपि उनमें से बहुत सी अभी भी कालातीत रूढ़ियों से चिपकी हुयी हैं।[55]

लीक से हटकर धर्म ग्रंथों की युगानुकूल व्याख्यायें भी हो रही हैं। प्रस्तुत प्रयास इसी श्रृंखला की एक लघु कड़ी है। महाकाव्यों का प्रस्तुत अध्ययन इंगित करता

---

(53) जनता की बढ़ती जागरुकता से भयभीत पूंजीवाद बाद में अपने मूल मार्ग से विचलित हो गया। फ्रांस ने स्वतंत्रता आदि के नारे अपनी मुख्य भूमिका तक सीमित कर दिये, अपने उपनिवेशों को उसने कभी मुक्त नहीं किया। बाद में तो स्वयं फ्रांस में भी नेपोलियन का अधिनायक तंत्र थोप दिया गया और जन आक्रोश को दिग्भ्रमित करने के लिये फ्रांस को लम्बी युद्ध श्रंखला में जकड़ दिया। अमरीका में काले दासों को मुक्त तो किया गया किन्तु लम्बे समय तक उन्हें द्वितीय श्रेणी का नागरिक ही बनाये रखा। इटली और जर्मनी में जन आक्रोश के विरुद्ध जातीय विद्वेष फैलाया गया, फासीवादी तानाशाही थोप दी गयी। भारत में अंग्रेजों ने 1857 के बाद सामन्तवाद को सुरक्षित छोड़ दिया। देशी रिसायतों को अभय दे दिया गया, सेना का गठन जातीय तथा क्षेत्रीय इकाइयों के नाम पर किया गया। सामाजिक सुधारों से हाथ खींच लिया। शिक्षा की प्रगति धीमी कर दी गयी। साम्प्रदायिक आधार पर सुधार लागू किये गये। स्वतन्त्रोत्तर भारत में भी भूमि सुधारों में छिद्र छोड़ दिये गये, सम्प्रदायवाद–जातिवाद को बढ़ावा दिया गया, आरक्षण का दुरुपयोग किया गया। धर्मिक पाखण्डवाद और कर्मकाण्ड को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

(54) कुछ प्रमुख नारी संगठन इस प्रकार है– अ.भा. जनवादी महिला समिति, आल इण्डिया वीमन्स कमेटी, नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्यिन वीमन, आन्ध्र वनिता मण्डली, वनांजना आदि ऐसे लगभग 250 संगठन है– लोक लहर, 19 मार्च 2000

(55) अंधविश्वासों कर्मकाण्डों–प्रवचनों में पढ़ी–लिखी आधुनिकाओं की भी भारी भीड़ देखी जाती है। मथुरा–वृन्दावन में विधवा संवासिनें (राधेश्यामी) अपने अन्तिम संस्कार के लिये धन एकत्र करती रहती हैं। विधिवत अन्तिम संस्कार होने से वे मोक्ष प्राप्त कर लेंगी। राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ. 12 अगस्त 2001, पृ. 7 आत्मकथा।

है कि लम्बे समय अंतराल में नारी की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा सदैव एक सी नहीं रही। यदि युग बदला तो नारी की भूमिका भी बदली। कुछ लोग यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि काल प्रवाह में नारी की कोई स्वतंत्र, सचेष्ट भूमिका नहीं रही, वह तो काल के प्रवाह में निर्जीव काष्ठवत् बहती–उतराती रही, नियति के हाथ की खिलौना बनी रही, उसका स्वयं का उपक्रम सुप्त पड़ा रहा।

लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं रही। नारी की महत्वपूर्ण युग परिवर्तनकारी भूमिका रही है। आयुध निर्माण, अग्नि की सुरक्षा, बाड़ी कृषि, पशुपालन का प्रारम्भ तथा दुग्ध उद्योग का आविष्कार, पुरुष को वस्त्र पहनने को प्रेरित करने आदि सभी में नारी की निर्णायक भूमिका रही है। यदि वह युग प्रवाह में बही भी है तो उसने युगधारा को मोड़ा भी हैं साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि बदलते युगों के दौरान नारी अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रखने में समर्थ न रह सकी।

यद्यपि आज की इक्कीसवीं शती की नारी अपनी अन्य भूमिकाओं के साथ–साथ राजनीतिक भूमिका के प्रति भी सचेत हो रही है। समय–समय पर अपने' 'राजनीतिक प्राणी' होने की घोषणा भी करती रहती है।[56] अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी नारी के अधिकारों को मान्यता मिलने लगी है। 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष तथा अगले दशक को संयुक्त राष्ट्र का महिला दशक मनाया गया। महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं की यह पहली अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता थी। 1975 का मैक्सिको सम्मेलन, 1980 का कोपिनहेगन सम्मेलन, 1985 का नैरोबी सम्मेलन और 1995 का बीजिंग सम्मेलन इस तथ्य के प्रमाण हैं।[57]

किन्तु इस कटु सत्य को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये कि भारत में नारीवादी आन्दोलन उस ऊँचाई को नहीं छू सके जहां तक पश्चिम

(56) कालीकट विश्वविद्यालय केरल में आयोजित भारतीय इतिहास कांग्रेस के हीरक जयन्ती अधिवेशन में स्त्री को भी 'राजनीतिक प्राणी' घोषित किया गया।
– लोक लहर, 23 जनवरी 2000 पृ. 9

(57) गोपाल सिंह (सं.) साउथ एशिया–डेमोक्रेसी, डिसकोण्टेण्ट एण्ड सोशिण्टल कानफ्रिक्टस, पृ. 413

के नारी आन्दोलन पहुँच गये हैं देश में प्रायः नारी विरोधी घटनायें होती रहती हैं लेकिन अभी तक इस प्रकार की घटनायें नारी आन्दोलनों का केन्द्र नहीं बन पायीं हैं। और न राजनीतिक दलों की चूलों को हिलाने में ही समर्थ हो सकीं हैं। इतना ही नहीं विडम्बना तो यहाँ तक है कि तथाकथित सुशिक्षित और प्रगतिशील नारियां भी अंधविश्वास और अवैज्ञानिक मान्यताओं और प्रतिगामी रुढ़ियों के मकड़जाल में फँसी अपनी हथकड़ी–बेड़ियों को और जकड़ती जा रही हैं।

यहाँ भारतीय नारी की दुर्बलता स्पष्ट दिखायी देती है। उठो, जागो और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करो,(58) यही आज का नारी धर्म है। नारी को अपनी मुक्ति की लड़ाई अन्य शोषित समूहों–भूमिहीन मजदूरों, सीमान्त किसानों, दलितों, श्रमजीवियों के मुक्ति संघर्षों से मिलाकर लड़नी होगी। मुक्ति का यही मार्ग है। नारी को शोषण का 'अन्तिम उपनिवेश' कहा जाता है किन्तु यह भी समझना होगा और धैर्य से लम्बे संघर्ष के लिये सन्नद्ध होना पड़ेगा कि कोई भी उपनिवेश एक–दो दिन में ध्वस्त नहीं होता।

प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष स्पष्ट है, नारी और पुरुष की सापेक्ष राजनीतिक भूमिका उनकी जैविक आवश्यकताओं तथा विशेषताओं के निरपेक्ष हर युग में प्रचलित प्राविधिकी के स्तर से निर्धारित होती रही थी और भविष्य में ऐसी ही होती रहेगी। प्रारम्भिक प्राविधिकी के अत्यन्त निम्न स्तरीय काल में, जब लकड़ी, हड्डी तथा पाषाण के अनगढ़ एवं कुछ कुछ सुगढ़ आयुध बनने लगे थे, आग का प्रयोग करना सीख लिया गया था, मानव वृक्षों से उतरकर गुफाओं तथा झोपड़ियों में आ गया था। तब तक नारी–पुरुष प्रत्येक क्षेत्र में समान स्तर पर थे। इसी से उन्हें समन, संहोत्र आदि कहा जाता था। नये–नये अन्वेषणों–आविष्कारों का कारवाँ निरन्तर चलता रहा और ऐसा समय भी आया जब मानव जाति ने बाड़ी कृषि और प्रारम्भिक पशुपालन की प्राविधिकी

(58) उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

का प्रयोग करना सीख लिया। नारी–पुरुष समानता की स्थिति में बदलाव आने लगा। पुरुष के सापेक्ष नारी का प्रभाव और सत्ता में वृद्धि होने लगी। इसी से इस युग को मातृप्रधान अथवा मातृसत्तात्मक युग की संज्ञा दी गई। कुछ समय अन्तराल में पशुपालन प्राविधिकी में और विकास हुआ। पशुओं की संख्या में वृद्धि हुई, गोचर भूमि का विस्तार हुआ, दुग्ध के नये–नये खाद्यों के निर्माण की प्राविधिकी विकसित हुई। इसी के साथ या कुछ समय बाद कृषि में पशुओं का प्रयोग किया जाने लगा। बड़े–बड़े और दूरस्थ क्षेत्रों में खेत बनाये जाने लगे। कृषि पर आधारित नये–नये शिल्प उद्योग पनपे, व्यापार–वाणिज्य ने डग बढ़ाये, वणिक पथों का निर्माण हुआ। समाज में जटिलता आई। जनराज्य क्रमशः जनपदीय तथा महाजनपदीय राज्यों में रूपान्तरित हुये। नये युग की नई प्राविधिकी से प्रभावित होकर नारी वर्चस्व पर ग्रहण लगने लगा। मातृ सत्ता का स्थान पुरुष प्रधान व्यवस्था ने ले लिया। पूरे सामन्ती काल में यही व्यवस्था बनी रही। औद्योगिक क्रान्ति ने एक बार फिर परिवर्तन का शंख बजा दिया। नई वाष्प, पेट्रोलियम तथा विद्युत ऊर्जा से संचालित शक्तिशाली, स्वचालित यंत्रों ने नारी को पुनः पुरुष के समकक्ष लाने का द्वार उन्मुक्त कर दिया। नई प्राविधिकी का सम्बल पाकर नारी मुक्ति मार्ग पर अग्रसर हो रही है किन्तु यथास्थिति की शक्ति यत्र–तत्र अवरोध भी उत्पन्न कर रही है। दोनों का द्वन्द्व समाज और राजनीति को गत्यात्मक बनाये हुये है।

प्रस्तुत अध्ययन इसी आशा तथा विश्वास के साथ हाथ में लिया गया है कि यह नारी समाज और उसके साथ–साथ सम्पूर्ण मानव जाति के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा। घने तिमिराच्छन, भयानक झंझा से उद्वेलित असीम महासागर में आकाश दीप जैसा पथ प्रदर्शन करेगा। यदि इसका शतमांश भी हो सका तो शोधार्थिनी अपना प्रयास सार्थक मानेगी।

इत्यलम्

परिशिष्ट

परिशिष्ट

कृत युग (पुरुषाभ वानरों का युग)

कृत युग का धर्म सनातन था। किसी का कोई कर्त्तव्य नहीं था। स्वाभाविक क्रियायें होती थीं। प्रजा का क्षरण नहीं होता था। देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग (नाग) नहीं थे। क्रय–विक्रय नहीं होता था। ऋक्, साम, यजुर वेद नहीं थे, मानवी क्रिया नहीं होती थी। ध्यान मात्र से फल प्राप्त होता था, सन्यास ही धर्म था। कोई भी व्याधि ग्रस्त नहीं होता था, इन्द्रिय क्षय नहीं होता था। ईर्ष्या, राग–द्वेष आदि मनोविकार नहीं थे। प्राणियों की आत्मा शुक्लवर्ण की थी। सबका आचार तथा ज्ञान समान था। उनका एक देव, एक मंत्र, एक वेद, एक धर्म था। वे कामना तथा आसक्ति रहित कर्म करते थे। आत्म योग ही धर्म था। कृतयुग तीन गुणों (सत्, रज, तम्) से रहित था। धर्म चारों पैरों पर स्थित था।

वन. 149.11—22

जया—सुप्रभा आख्यान

(आयुध निर्माण)

प्रजापति दक्ष की दो पुत्रियाँ थीं। उनके नाम जया तथा सुप्रभा थे। उन दोनों का विवाह प्रजापति कृशाश्व से हुआ था। जया के पचास रूपरहित आयुध पुत्र उत्पन्न हुये। सुप्रभा ने भी पचास आयुधों को जन्म दिया। उनका नाम संहार था। प्रजापति कृशाश्व ने अपने इन सौ आयुध पुत्रों को राजा विश्वामित्र को उस समय दिया था जब वे शासन करते थे। ताटका बध के उपरान्त विश्वामित्र ने ये सभी आयुध राम को दे दिये थे।

रामा. बाल. 21.13—17, रामा. बाल. 26.29,30

भृगु–पुलोमा (अग्नि का आविष्कार)

ब्रह्मा जी ने वरुण के यज्ञ में महर्षि भृगु को अग्नि से उत्पन्न किया था। अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि भृगु ब्रह्मा का हृदय भेदन कर प्रकट हुये थे। भृगु की पत्नी का नाम पुलोमा था। पुलोमा गर्भवती थी। एक दिन महर्षि भृगु की अनुपस्थिति में पुलोमा नाम का राक्षस उनके आश्रम में आया। राक्षस ने पुलोमा को अपनी वाग्दत्ता पत्नी बताया। अग्नि ने राक्षस की बात की पुष्टि करते हुये ऋषि पत्नी का परिचय दे दिया। राक्षस ने ऋषि पत्नी पुलोमा का हरण कर लिया। भृगु ने कुपित होकर अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप दे दिया। विरोध स्वरूप अग्नि लुप्त हो गये। बाद में ब्रह्मा जी ने शाप में संशोधन किया जिससे वे अपान देश की ज्वालाओं तथा क्रव्यात रूप से ही सर्वभक्षी होंगे, सम्पूर्ण शरीर से नहीं।

महा. आदि. 5.1, 8.13,15,34; महा. आदि. 6.1,12,14;
महा. आदि. 7.15,22,23; महा. आदि. 66.41

सुदर्शना–सुदर्शन

(अग्नि की सुरक्षा तथा अग्नि प्रकाश का प्रयोग)

माहिष्मती नरेश दुर्योधन पर देव नदी नर्मदा मोहित हो गई। नर्मदा के गर्भ से दुर्योधन के सुदर्शना नाम की एक पुत्री हुई। युवती होने पर सुदर्शना पर अग्निदेव मुग्ध हो गये। उन्होंने राजा से उनकी पुत्री सुदर्शना को अपने लिये माँगा। राजा ने अग्नि का यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। रुष्ट होकर अग्निदेव राजा के यज्ञ में अदृश्य हो गये। बाद में राजा अपनी पुत्री को अग्नि के हाथ में देने पर सहमत हो गये। साथ ही उन्होंने शर्त रखी कि अग्नि का निवास उनके नगर में सदैव बना रहे। अग्नि ने शर्त मान ली। अग्नि के सुदर्शना के गर्भ में सुदर्शन नामक पुत्र का जन्म हुआ।

महा. अनु. 2.6,13,18,21—23,30—32,36

इला–सुद्युम्न

(नारी पुरुष समानता)

वैवस्चत मनु सन्तान हीन थे। उन्होंने पुत्र की कामना की किन्तु उनकी रानी से एक पुत्री उत्पन्न हुई। उसका नाम इला रखा गया। राजा अत्यंत दुखी हुये। वशिष्ठ जी ने अपने तपोबल से उस इला नाम वाली पुत्री को पुत्र बना दिया। उसका नाम सुद्युम्न रखा गया। बड़े होने पर पर सुद्युम्न राजा हुये। एक दिन वे शिकार खेलने वन में गये। वन में प्रवेश करते ही वे शंकर जी के शाप से स्त्री हो गये। स्त्री रूप में उनका नाम इला पड़ गया। कुछ काल पश्चात् चन्द्रमा के पुत्र बुध के साथ इला का संयोग हुआ और इला के गर्भ से पुरुरवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। बाद में शंकर जी की अनुकम्पा से इला एक महीने तक नारी और एक महीने तक पुरुष (सुद्युम्न) रूप में रहने लगी। अंत में सुद्युम्न अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य भार सौंपकर वन में चले गये।

भाग. 9.1.16, 22, 26, 32, 39, 42

पुरुरवा–उर्वशी (पशुपालन–वस्त्र धारण युग)

चन्द्रमा के पुत्र बुध और इला के संयोग से एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम पुरुरवा रखा गया। पुरुरवा के पौरुष और सौन्दर्य पर रीझकर उर्वशी उनके साथ रहने के लिये स्वर्ग से पृथ्वी पर आई। उर्वशी ने पुरुरवा के साथ रहने के लिये तीन शर्तें रखीं उसके पालतू दो भेड़ के मेमनों की रक्षा करना, उर्वशी के लिये भोजन में केवल घी खाने की ही व्यवस्था करना और मैथुन के अतिरिक्त अन्य किसी समय पुरुरवा को उर्वशी वस्त्रहीन अवस्था में न देखे। पुरुरवा ने उर्वशी की तीनों शर्तें स्वीकार कर लीं। दोनों बहुत दिनों तक साथ–साथ विहार करते रहे।

एक अंधेरी रात में कुछ गंधर्व उर्वशी के मेमनों को चुराकर भाग निकले। उर्वशी के शोर मचाने पर वस्त्रहीन अवस्था में ही पुरुरवा गंधर्वों के पीछे दौड़े। उन्हें पीछे आते देखकर गंधर्वों ने मेमनों को छोड़ दिया और तीव्र प्रकाश फैला दिया। उर्वशी ने पुरुरवा को नग्न दशा में देख लिया। शर्त का उल्लंघन होते ही उर्वशी उन्हें छोड़कर चली गई।

बाद में गंधर्वों ने पुरुरवा को एक अग्निस्थली दी। उन्होंने उसे उर्वशी समझा। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह उर्वशी नहीं है तो वे उसे वन में छोड़ आये। वहाँ पर पहले एक शमी वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसी वृक्ष पर बाद में एक पीपल का वृक्ष उत्पन्न हुआ। पुरुरवा ने दोनों वृक्षों की लकड़ियों को रगड़ कर जातवेदा नाम की अग्नि उत्पन्न की। बाद में उन्होंने जातवेदा अग्नि को तीन भागों – आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि में विभक्त किया।

भाग. 9.15,16,21,22,30,31,42,44–46

शान्तनु–गंगा (मातृ–पितृ सत्ता का मिलन)

भरत वंश के नरेश शान्तनु के पास गंगा नाम की नारी आई। उसने शान्तनु के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। साथ ही स्पष्ट कर दिया कि राजा शान्तनु उसे किसी भी भले या बुरे कार्य को करने से नहीं रोकेंगे और उससे कभी भी अप्रिय वचन नहीं कहेंगे। यदि राजा ने कभी विरुद्ध आचरण किया तो गंगा उन्हें छोड़कर चली जायेगी। शान्तनु ने शर्तें स्वीकार कर लीं।

कालान्तर में गंगा के गर्भ से एक–एक कर आठ पुत्र उत्पन्न हुये। पुत्रों के जन्म लेते ही गंगा उन्हें गंगा नदी में प्रवाहित कर देती थी। इस प्रकार एक–एक कर सात पुत्र गंगा में प्रवाहित कर दिये गये। राजा शान्तनु ने आठवें पुत्र को जल में प्रवाहित न होने दिया। पुत्र को राजा के पास छोड़कर गंगा ने राजा से सम्बन्ध तोड़ दिया और वह पुनः अपने रूप में विलीन हो गई।

महा. आदि. 98.2–5,12–17,23

ऋष्य श्रृंग या श्रृंगीऋषि (मातृ–पितृ सत्ता समन्वय)

एक बार विभाण्डक ऋषि तपस्या तपस्या में लीन थे। स्नान करते समय उन्होंने उर्वशी अप्सरा को देखा। उसे देखकर उत्तेजित ऋषि स्खलित हो गये। जल में गिरे वीर्य को एक प्यासी मृगी ने पी लिया। मृगी गर्भवती हो गई। बाद में उसी मृगी के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक के सिर पर एक सींग था। इसी से उसका नाम ऋंगी ऋषि या ऋष्य श्रृंग पड़ गया।

कुल काल के उपरान्त अंगदेश के राजा लोमपाद के राज्य में वर्षा नहीं हुई। ब्राह्मणों ने बताया कि यदि राज्य में ऋष्य श्रृंग पधारें तो वर्षा अवश्य होगी। राजा ने कुछ वैश्याओं को ऋषि के लाने का दायित्व सौंपा। वैश्यायें लुभाकर श्रृंगी ऋषि को अंगदेश में ले आयीं। उनके आते ही वर्षा होने लगी।

महा. वन. 110.35,36,39,41,43,48,53, महा. वन. 113.8,10

अगस्त–लोपामुद्रा (अतिरिक्त उत्पादन की प्रेरणा)

महर्षि अगस्त का विवाह विदर्भ राजकुमारी लोपामुद्रा से हुआ था। लोपामुद्रा ने महर्षि से राजकुलोचित श्रृंगार प्रसाधन की माँग की। अगस्त धनहीन थे अतएव में धन के याचना हेतु एक–एक कर तीन राजाओं – श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व तथा त्रसदस्यु के पास गये। तीनों का आय–व्यय पूरी तरह संतुलित था। वे ऋषि को कुछ न दे सके। अंत में वे असुर राज इल्वल के पास गये। असुर राजा इल्वल ने अगस्त को आवश्यक धन प्रदान किया। उस धन से अगस्त ने लोपामुद्रा की इच्छायें पूर्ण कीं।

महा. वन. 97.7.17–19; महा. वन. 98.5,6,10,11,16,17;

महा. वन. 99.16,18

माधवी और गालव द्वारा आठ सौ श्यामकर्ण अश्वों की दक्षिणा (अतिरिक्त उत्पाद में वृद्धि तथा नारी अवमूल्यन)

गालव ऋषि महर्षि विश्वामित्र के शिष्य थे। विश्वामित्र के मना करने पर भी गालव ने उन्हें दक्षिणा देने का बार–बार हट किया। विवश हो विश्वामित्र ने उनसे श्यामकर्ण श्वेत आठ सौ घोड़े दक्षिणा स्वरूप माँगे। गालव के मित्र पक्षिराज गरुड़ ने अश्व प्राप्ति करने में सहायता की। वे दोनों चलते हुये पूर्व दिशा में ऋषभ पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट शाण्डिली नाम की ब्राह्मणी से हुई। गरुड़ उस ब्राह्मणी की तपस्या से बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने उसे उस लोक में पहुँचाने का संकल्प किया जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का निवास है। ब्राह्मणी ने दूसरे की कृपा से उत्तम लोक में जाने के प्रस्ताव को अपना अपमान माना। परिणाम स्वरूप गरुड़ के पंख नष्ट हो गये, उनकी उड़ने की शक्ति जाती रही। गरुड़ ने अपनी भूल के लिये क्षमा याचना की। उनके पंख पुनः उग आये।

गरुड़ और गालव वहाँ से चलकर राजा ययाति के पास पहुँचे और उनसे आठ सौ श्यामकर्ण श्वेत घोड़ों के बराबर धन की याचना की। राजा धन तो न दे सके किन्तु उन्होंने अपनी युवती पुत्री माधवी उन्हें दे दी। जिसकी शुल्क से वे आठ सौ घोड़े क्रय कर सकते थे। गालव ने ययाति की पुत्री को दो सौ अश्वों के बदले एक वर्ष के लिये राजा हर्यश्व को दे दिया। माधवी से राजा ने एक पुत्र उत्पन्न किया। उसके उपरान्त गालव ऋषि माधवी को क्रमशः दिवोदास और उशीनर के पास ले गये और उनसे भी दो–दो सौ अश्व प्राप्त किये। छैः सौ घोड़े लेकर गालव विश्वामित्र के पास पहुँचे। उन्होंने घोड़ों के साथ एक वर्ष के लिये माधवी को भी विश्वामित्र को सौंप दिया। एक वर्ष के उपरान्त गालव ने माधवी को उसके पिता ययाति को वापिस कर दिया। माधवी ने इस

हृदयहीन समाज को छोड़कर मृगी होकर तपस्या करने के लिये वन की राह पकड़ी।

महा. उद्योग. 106.26,27

महा. उद्योग. 113.1,8–13, 17

महा. उद्योग. 115.13,14

महा. उद्योग. 116.15

महा. उद्योग. 117.20,21

महा. उद्योग. 118.15,21

महा. उद्योग. 119.12,17

महा. उद्योग. 120.5–7

खाण्डव वन दाह (कृषि का विस्तार)

राजा श्वेतकि के यज्ञ में निरन्तर बारह वर्षों तक घृतपान करते रहने से अग्नि को मन्दाग्नि हो गई। ब्रह्मा जी ने अग्नि को बताया कि खाण्डव वन और उसमें निवास करने वाले प्राणियों का भक्षण करने से उनका अजीर्ण दूर हो सकता है। अग्नि ने लगातार सात बार खाण्डव वन को जलाने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। बाद में अग्नि ने श्री कृष्ण और अर्जुन से सहायता माँगी। उत्तम आयुधों की माँग पर उन्होंने सहायता करने का वचन दिया। अग्नि ने अर्जुन को गाण्डीव धनुष्य, दो अक्षय तूणीर तथा अभेद्य रथ और कृष्ण को सुदर्शन चक्र तथा कौमोद नाम की गदा प्रदान की। कृष्ण और अर्जुन की सहायता पाकर अग्नि ने खाण्डव वन को जलाना प्रारम्भ कर दिया। देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि वन्य प्राणियों ने खाण्डव दाह का विरोध किया किन्तु वे असफल रहे। पन्द्रह दिन में अग्नि ने सम्पूर्ण खाण्डव वन, उसमें रहने वाले प्राणियों समेत जलाकर नष्ट कर दिया। केवल कुछ प्राणी – अश्वसेन नाग, भयासुर, चार पक्षी ही बच गये।

महा. आदि. 222.64, 70, 72, 83; महा. आदि. 223.16–19;

महा. आदि. 224.22,23,28; महा. आदि. 226.पूरा अध्याय;

महा. आदि. 227.46,47

विश्वामित्र–शुनः शेप (नर हत्या की अनुपयोगिता)

प्राचीन काल में अयोध्या नरेश अम्बरीष ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञ के लिये चयनित यज्ञ पशु को इन्द्र ने चुरा लिया। राजा अम्बरीज यज्ञ पशु के रूप में किसी पुरुष को क्रय करने के लिये निकले। भृगुतंग पर्वत पर ऋचीक मुनि रहते थे। उन्होंने अपने मझले पुत्र शुनः शेप को राजा के हाथों बहुत सी स्वर्ण–रत्नों की राशि एवं गायों के बदले बेच दिया।

शुनः शेप ने अपनी जीवन रक्षा हेतु महर्षि विश्वामित्र से प्रार्थना की। उन्होंने उस के प्राणों की रक्षा की।

रामा. बाल. 61.5,6,11,22,23; वही 62.20,21,26

कद्रू–विनिता (दास प्रथा)

कद्रू और विनीता दो बहिनें थीं। कद्रू के पुत्र नाग तथा विनिता के पुत्र सुपर्ण पक्षीगण हुये। एक दिन संध्या के समय कद्रू और विनिता दोनों बहिनें घूमने निकलीं। उन्हें समुद्र मंथन द्वारा निकला उच्चैंश्रवः घोड़ा दिखलाई दिया। कद्रू ने पूछा, घोड़े की पूँछ का रंग कैसा है ? विनिता ने पूँछ का रंग श्वेत बताया। कद्रू ने पूँछ का रंग काला बताया। उन्होंने प्रातः काल आकर पूँछ देखकर रंग का निर्णय करने पर सहमति जताई। साथ ही यह भी निर्णय लिया कि जो हारे, वह विजयी पक्ष की दासी बनेगी।

कद्रू ने कुटिलता की चाल चलते हुये अपने नाग पुत्रों को पूँछ में लिपट जाने के लिये कहा जिससे पूँछ काली दिखे। जिन नागों ने उसकी आज्ञा न मानी उसने उसे शाप दे दिया, 'जाओ पाण्डव वंशी राजर्षि जनमेजय के सर्वयज्ञ की अग्नि में तुम सब भस्म हो जाओगे।' शेष नागों ने माता की आज्ञा का पालन किया और घोड़े की पूँछ पर काले बाल बन कर लिपट गये। परिणाम स्वरूप दोनों बहिनों को अश्व की पूँछ काली दिखाई दी। विनिता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। जिन नागों ने माता की आज्ञा नहीं मानी थी उन्होंने अपनी रक्षा का उपाय खोजने के लिये नागों की सभा आहूत की। नागराज वासुकी की अध्यक्षता में सभा हुई। उन्होंने अपनी बहिन के पुत्र आस्तीक को माध्यम बनाकर जनमेजय से सन्धि करके अपने प्राण बचाये।

महा. आदि. 16.5, 15, 17, 24 वही. 17.1, 2

वही. 20.2–8 वही. 22.3

वही. 23.1–3 वही. 58.8

देवयानी–शर्मिष्ठा

(बौद्धिक बल की राजसत्ता पर सर्वोच्चता)

देवयानी दानवों के गुरू तथा पुरोहित शुक्राचार्य की तथा शर्मिष्ठा दानवों के राजा वृषपर्वा की पुत्री थी। दोनों सहेलियां एक बार वन बिहार को निकलीं। वे अपने–अपने वस्त्र किनारे पर रखकर स्नान के लिये एक सरोवर में उतरीं। स्नान के बाद बाहर आकर धोखे से शर्मिष्ठा के देवयानी के वस्त्र पहिन लिये। वस्त्रों को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया। दोनों ने एक दूसरे को भला–बुरा कहा। शर्मिष्ठा ने देवयानी को उसके पिता के याचक की पुत्री कहा। देवयानी ने अपने पिता से जानना चाहा कि क्या वह वास्तव में वृषपर्वा के याचक की पुत्री है ? पुत्री के सन्तोष के लिये शुक्राचार्य ने दैत्यराज्य को छोड़कर अन्यत्र जाने की सूचना दैत्यराज वृषपर्वा के पास भिजवा दी। दैत्यराज ने शुक्राचार्य से राज्य छोड़कर न जाने की प्रार्थना की क्योंकि उन्हीं के ज्ञान–विज्ञान के सहारे दैत्यराज टिका था। शुक्राचार्य इस शर्त पर रुके कि देवयानी के विवाह के समय शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनकर उसके साथ जायेगी। शर्मिष्ठा को शर्त माननी पड़ी।

महा. आदि. 78.4–12, 32;

वही. 80.5, 8, 16, 22

नहुष–सप्तऋषि विवाद

(बौद्धिक बल के हाथों राजसत्ता की पराजय)

वृत्रासुर के बध से लगी ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र अदृश्य हो गये। उनके स्थान पर राजा नहुष को इन्द्र बनाया गया। इन्द्र पद पर रहते हुये नहुष ने पुराने इन्द्र की पत्नी महारानी शची की कामना की और अपने महल में आमंत्रित किया। इन्द्राणी राजा से मिलने को इस शर्त पर सहमत हुईं कि राजा सप्तऋषियों को वाहन बनाकर इन्द्राणी के महल में पधारें। राजा ने सप्तऋषियों को अपनी पालकी में जोत दिया। मार्ग में नहुष को ढोते–ढोते उन ऋषियों ने नहुष से पूँछा "देवेन्द्र, ब्रह्म में वर्णित या प्रचलित गायों के प्रोक्षण से सम्बन्धित मंत्रों को आप प्रमाणित मानते हैं या नहीं ?" नहुष को उन मंत्रों को प्रमाणिक नहीं माना। ऋषियों ने प्रतिवाद किया। इस प्रकार विवाद बढ़ गया। क्रोधोन्मत्त नहुष ने अगस्त ऋषि के मस्तक पर चरण प्रहार किया। ऋषि ने उसे महासर्प होकर पृथ्वी पर गिरने का शाप दिया।

महा. उद्योग. 10.46

महा. उद्योग. 11.9, 18, 19

महा. उद्योग. 15.13, 21

महा. उद्योग. 17.9, 10, 12, 16, 17

वशिष्ठ–विश्वामित्र संघर्ष

(उत्पादन के प्रमुख साधन पर आधिपत्य हेतु सत्ता संघर्ष)

पूर्वकाल में कान्यकुब्ज देश में एक राजा थे। उनका नाम विश्वामित्र था। एक दिन राजा आखेट करने वन में गये। आखेट करने में राजा थककर महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जा पहुँचे। वशिष्ठ जी के पास मनोवांछित कामनाओं को पूर्ण करने वाली एक कामधेनु गाय थी। वशिष्ठ जी ने उसी गाय से प्राप्त उत्तम पदार्थों से राजा विश्वामित्र का सेना सहित स्वागत किया। राजा विश्वामित्र ने करोड़ों गायों अथवा अपने सम्पूर्ण राज्य के बदले वह गाय वशिष्ठ जी से लेनी चाही। वशिष्ठ जी ने गाय देने में असमर्थता प्रकट दी। विश्वामित्र ने बलपूर्वक गाय का अपहरण कर लिया। क्रोधित गाय ने पूँछ से पल्हवों, थनों से द्रविड़ों और शकों, योनि से यवनों मूत्र–गोबर से शबरों, पार्श्व से पौण्ड्रों, किरातों, यवनों, सिंहलों, बर्बरों, रवसों, फैन से चिनुकों, पुलिन्दों, चीनियों, हूणों केरलों आदि म्लेच्छों की विशाल सेना की सृष्टि कर दी। इस सेना ने विश्वामित्र की सेना को खदेड़ दिया। विश्वामित्र क्षत्रिय बल को ब्राह्मण बल से हीन मानते हुये गाय को छोड़कर चले गये।

महा. आदि. 174.4, 6, 9, 16–18, 22, 36–38, 43, 45

परशुराम–सहस्त्रबाहु अर्जुन

(कृषि युग में प्रमुख उत्पादन साधन पर आधिपत्य हेतु सत्ता संघर्ष)

एक बार अनूप देश का वीर राजा कार्तवीर्य अर्जुन महर्षि जमदग्नि के आश्रम में आया। उस समय ऋषि के पुत्र वन में आहार एकत्र करने गये हुये थे। ऋषि ने राजा का यथोचित सत्कार किया। चलते समय अर्जुन ने ऋषि का होम धेनु बछड़ा बलपूर्वक हर लिया और आश्रम को भी उजाड़ दिया। कुछ समय पश्चात ऋषि के सबसे छोटे पुत्र परशुराम वन से लौटे। ऋषि ने उन्हें कार्तवीर्य अर्जुन की अभद्रता से अवगत कराया। परशुराम जी अत्यंत क्रोधित हुये। उन्होंने अर्जुन पर आक्रमण किया उसका वध कर बछड़ा छुड़ा लिया।

राजा अर्जुन के पुत्र अपनी पिता की हत्या से अत्यंत क्रोधित हुये। एक दिन परशुराम की अनुपस्थिति में उन्होंने आश्रम पर धावा बोल दिया और ऋषि जमदग्नि की हत्या कर दी। वन से लौटने पर उन्हें पिता की हत्या की जानकारी हुई। क्रोधोन्मत्त होकर उन्होंने राजा अर्जुन के सभी पुत्रों का वध कर डाला। इतना ही नहीं उन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय शून्य कर डाला।

महा. वन. 116.19–29

महा. वन. 117.7–9

परशुराम–राम विवाद

(सत्ता संघर्ष में पासा पलटना – सैनिक क्षेत्र में)

मिथिला नरेश जनक ने अपनी कन्या के विवाह हेतु निश्चय किया कि जो वीर उन के यहाँ सुरक्षित शंकर जी के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसी के साथ वह अपनी कन्या का विवाह सम्पन्न करायेंगे। अयोध्या के राजकुमार राम ने धनुष पर प्रत्यंचा ही नहीं चढ़ा दी अपितु उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचा। अचानक बज्रपात जैसी भयानक आवाज़ करता हुआ धनुष टूट गया। ऐसा लगा मानो पर्वत फट पड़ा हो। पृथ्वी में भी कम्पन होने लगा। राम के साथ सीता का विवाह सम्पन्न हो गया।

जनकपुरी से अयोध्या की ओर लौटते समय मार्ग में राम को परशुराम जी मिले। शंकर जी के धनुष को तोड़ने के कारण वे राम से रुष्ट हुये। उन्होंने अपना वैष्णव धनुष चढ़ाने के लिये राम को दिया और उन्हें द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा। राम ने परशुराम के हाथ से वैष्णव धनुष ले लिया। उस पर वाण रखकर प्रत्यंचा खींची। उस बाण ने परशुराम जी द्वारा अर्जित पुण्य लोकों को नष्ट कर दिया। परशुराम जी ने राम की महत्ता स्वीकार कर ली।

रामा. बाल. 66.26; वही. 67.17, 18; वही. 72.39;

वही. 75.20, 21, 27, 28; वही. 76.4, 21, 22

महा. वन. 99.46, 47, 50, 51, 61, 64

परशुराम–भीष्म

(धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों की राजन्यों के हाथों पराजय)

काशिराज की तीन पुत्रियों के स्वयंवर समारोह से भीष्म तीनों को हर लाये। सबसे बड़ी अम्बा ने शाल्वराज का मन से वरण कर लिया। अतएव भीष्म ने उसे शाल्वराज के पास जाने की अनुमति दे दी। शेष दोनों का विवाह अपने भाई विचित्रवीर्य से कर दिया। शाल्वराज ने अम्बा को अस्वीकार कर दिया। निराश अम्बा भीष्म के गुरु परशुराम जी के पास पहुँची। परशुराम जी ने भीष्म को अम्बा से विवाह करने की आज्ञा दी। भीष्म ने विनय पूर्वक असमर्थता प्रकट की। क्रोधित होकर उन्होंने भीष्म को युद्ध के लिये ललकारा।

भीष्म और परशुराम आमने–सामने आ डटे। भीष्म रथारूढ़ थे। परशुराम रथ–कवच हीन थे। भीष्म ने उन्हें रथ–कवच देने का प्रस्ताव किया। भीष्म को झिड़कते हुये परशुराम जी ने कहा, "पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद घोड़े हैं, वायु सारथि हैं, वेद मातायें कवच हैं।" दोनों में कई दिनों तक युद्ध हुआ। अंत में परशुराम को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। परशुराम जी की पराजय को देखकर भी अम्बा हतोत्साहित नहीं हुई। उसने घोर तप करके भीष्म का वध करने का निश्चय किया। उसने कई जन्म तक तपस्या की। अंत में शिखण्डी के रूप में जन्म लेकर वह महाभारत के युद्ध में भीष्म के वध का निमित्त बनी।

महा. उद्योग. 173. 9,22; महा. उद्योग. 174.6; महा. उद्योग. 175.2,6;
महा. उद्योग. 178.30,44; महा. उद्योग. 179.2–4,19;
महा. उद्योग. 185.8; महा. उद्योग. 186.9,10,41;
महा. उद्योग. 187.1; महा. भीष्म. 119.1,87,88

सावित्री–सत्यवान (राजकुमारी की भूमिका)

भद्रदेश के राजा अश्वपति के एक कन्या थी। उसका नाम सावित्री था। युवती होने पर वह स्वयं अपने योग्य वर खोजने निकली। लौटने पर उसने पिता को सूचित किया कि उसने शाल्वदेव के नरेश द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान को अपने वर रूप में वरण किया है। राजा द्युमत्सेन अंधे तथा राज्यच्युत हैं। वे वन में रहते हैं। उनका पुत्र भी उनके साथ रहता है। संयोग से उस समय राजा के समीप नारद जी उपस्थित थे। उन्होंने सत्यवान को सर्वगुण सम्पन्न बताया साथ ही उसकी आयुमात्र एक वर्ष की ही बताई। राजा ने अन्य वर खोजने के लिये सावित्री को बहुत समझाया। सावित्री अपने निश्चय पर अटल रही। सावित्री सत्यवान का विवाह सम्पन्न हो गया।

सावित्री पति के साथ रहते समय एक–एक दिन गिनती रही। जिस दिन वर्ष का अन्तिम दिन आया, उस दिन आग्रह पूर्वक सावित्री पति के साथ फल–फूल तथा ईंधन लेने वन में गई। लकड़ी काटते समय सत्यवान के सर में पीड़ा होने लगी। वह सावित्री की गोद में सर रखकर सो गया। इतनें में यमराज प्रकट हुये और सत्यवान के प्राण को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये। सावित्री ने उनका अनुसरण किया। मार्ग में यमराज ने सावित्री से लौट आने का आग्रह किया। सावित्री नही लौटी। उसने अपनी वाक् पटुता से यमराज को प्रसन्न कर लिया। उसने यमराज से अपने श्वसुर की नेत्र ज्योति प्राप्त करने, शक्तिशाली होने, पुनः राज्य प्राप्त करने और सदैव धर्म पर दृढ़ रहने, अपने पिता के सौ पुत्र होने, और अंत में सत्यवान के संयोग स्वयं उसके गर्भ से सौ पुत्र प्राप्त होने के वरदान प्राप्त कर लिये। इस प्रकार सावित्री ने अपने पति को आसन्न मृत्यु के जबड़ों से सुरक्षित बाहर निकाल दिया।

महा. वन. 294.1, 7–10, 26–28; महा. वन. 295.15;

महा. वन. 296.22, 29; महा. वन. 297.6, 27, 32, 38, 45, 56

सीता आख्यान

मिथिला नरेश जनक, यज्ञ के लिये भूमि शोधन के लिये हल चला रहे थे। उसी समय हल की नोक से बनी रेखा (सीता) से एक कन्या प्रकट हुई। सीता से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। जब सीता वयस्क हुई तो राजा ने निश्चय किया कि जो भी व्यक्ति शंकर प्रदत्त धनुष को चढ़ा देगा उसी से सीता का विवाह होगा। अयोध्या–राजकुमार राम ने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी। राम–सीता का विवाह सम्पन्न हो गया।

कुछ काल पश्चात् माता कैकेयी के वरदान से प्रेरित राम को वनवास मिला। सीता भी राम के साथ, उनसे भी आगे–आगे चलने का विश्वास दिलाकर वन में चलने को तैयार हो गईं। राम सीता के साथ लक्ष्मण भी वन में चले गये। चित्रकूट में राम, सीता तथा लक्ष्मण ने कुछ दिन निवास किया। भरत ने राज पद अस्वीकार कर दिया और वे राम को लौटाने के लिये चित्रकूट में पहुँचे। राम ने राज्य ग्रहण करने का भरत का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। वन में लंकापति रावण ने सीता का हरण कर लिया। अपहरण के समय मार्ग में सीता जोर–जोर से विलाप करती रहीं, शायद कोई सुन कर राम तक उनके अपहरण की सूचना दे दे। इसी उद्देश्य से उन्होंने पर्वत पर बैठे वानरों के बीच अपने वस्त्र और आभूषण फेंक दिये। लंका में ले जाकर रावण ने सीता को नाना प्रकार के प्रलोभन दिये तथा उनसे अपनी रानी बनने का अनुरोध किया और धमकियाँ भी दीं। पर सीता ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कुछ समय पश्चात सीता की खोज करते हुये राम दूत हनुमान लंका की अशोक वाटिका में वन्दिनी सीता से मिले। सीता ने हनुमान पर सहज ही विश्वास नहीं किया। उन्होंने हनुमान को रावण के षडयंत्र का कोई रूप समझा। सीता ने भली भाँति परीक्षा लेने के उपरान्त ही हनुमान को राम दूत के रूप में मान्यता दी। इतने पर भी सीता सावधान रहीं। वे हनुमान के साथ लंका से निकलकर

राम के पास जाने को तैयार नहीं हुईं। हनुमान की परीक्षा लेने पर भी उन्हें शंका बनी ही रही।

सीता का पता पाकर राम ने लंका पर आक्रमण किया और शत्रु को नष्ट कर सीता को मुक्त कराया। सीता को विजय की सूचना देते समय हनुमान ने सीता पर दृष्टि रखने वाली राक्षसी प्रहरियों का बध करने की आज्ञा सीता से माँगी। सीता ने प्रहरियों का बध नहीं होने दिया क्योंकि वे रावण के अधीन थीं और उसकी आज्ञा पालक थीं। विजय के उपरान्त राम ने सीता से कहा कि मैंने रावण का बध तुम्हें पाने के लिये नहीं किया है, मैंने तो अपने कुल के मान सम्मान की रक्षा के लिये लंका को जीता है। राम ने सीता के चरित्र पर संदेह व्यक्त किया। यह कहते हुये राम ने सीता को त्याग दिया। सीता ने प्रतिवाद करते हुये राम को असभ्य व्यक्तियों की तरह बात करने का उलाहना दिया। उन्होंने अपने भूतकालीन सात्विक व्यवहार का स्मरण दिलाया। इसके उपरान्त उन्होंने अपने को पवित्र सिद्ध करने के लिये अग्नि परीक्षा दी और उसमें वे उत्तीर्ण हुईं। राम ने सीता को अंगीकार किया।

वनवास की अवधि पूरी कर सीता पति के साथ अयोध्या लौटीं और उनका राम के साथ अयोध्या के राज सिंहासन पर अभिषेक हुआ। कुछ काल पश्चात् सीता के चरित्र को लेकर अयोध्या वासियों में असंतोष उत्पन्न होने लगा। सीता को शुद्ध–पवित्र स्वीकारते हुये भी राम ने सीता का परित्याग कर दिया। निष्कासित सीता ने महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में शरण ली। सीता ने पतिव्रत धर्म का आश्रय लेते हुये राम की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। बाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहते हुये सीता के लव, कुश नाम के दो पुत्र हुये। राम द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ में महर्षि बाल्मीकि के साथ लव–कुश भी आये। उन्होंने वहाँ रामकथा का गायन किया। राम ने वहाँ दुबारा सीता को अपनी पवित्रता सिद्ध करने को आमंत्रित किया। अपनी पवित्रता सिद्ध करते हुये

सीता पृथ्वी के विवर में समा गईं।

रामा. बाल. 66.13–16, 67.16, 73.39

अयोध्या. 26.7, 27.7, 40.16, 17, 56.34, 79.8–11, 101.8, 107.16, 17

आरण्य. 52.5, 13, 54.2,3, 55.13.37, 56.20–22

सुन्दर. 20.16–36, 21.4–6, 34.2,9, 35.3,4, 8–77,85,88, 36.2, 37.40,45–68

युद्ध. 113.11,30,38,39, 115.15–18, 116.5,10,16, 118.1,5,6, 128.59–61

उत्तर. 43.16–19, 45.11,11,16,17, 47.13, 18.17,18, 92.9, 94.11,12

95.3,4, 96.12, 97.13–20

भरत माता कैकेयी (रानी की भूमिका)

अयोध्या नरेश महाराज दशरथ की तीन रानियां थीं। कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा। एक बार देवासुर संग्राम में राजा दशरथ ने देवताओं की ओर से भाग लिया था। उनकी रानी कैकेयी रथ की सारथी थी। युद्ध करते हुये राजा रणक्षेत्र में घायल हो गये। कैकेयी ने सावधानी से उन्हें रणक्षेत्र से सुरक्षित निकाल लिया था। राजा ने प्रसन्न होकर कैकेयी को दो वरदान देने का वचन दिया। कैकेयी ने उचित समय पर वर दान माँगने को कहा। राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी ने अपने वरदान माँग लिये। एक वरदान के द्वारा उसने अपने पुत्र भरत के लिये युवराज पद माँग लिया और दूसरे के द्वारा राम को चौदह वर्ष के लिये वन में रहने का वरदान प्राप्त कर लिया था।

रामा. अयोध्या. 18.32,33, 9.12–17, 11.26, 27

द्रौपदी गाथा

(द्रौपदी द्वारा कर्ण को लक्ष्यभेद से रोकना)

(राजकुमारी–रानी की भूमिका)

राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी (कृष्णा) के स्वयंवर में शर्त थी कि जो वीर पाँच बाणों से लक्ष्य भेद कर सकेगा उसी से द्रौपदी का विवाह होगा। देश–देश से आये राजाओं–राजकुमारों ने बारी–बारी से प्रयास किया किन्तु कोई लक्ष्य न भेद सका। अंत में महाबली सूतपुत्र कर्ण उठा और उसने सहज ही धनुष पर बाण चढ़ा दिया। उसे लक्ष्य भेद करते देख द्रौपदी ने चिल्लाकर कहा, ''मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नहीं करूँगी।'' कर्ण को धनुष छोड़कर हटना पड़ा।

महा. आदि. 184. 35, 36

महा. आदि. 186. 20, 21, 23

कौरव राजसभा में अपमानित द्रौपदी के सांविधानिक प्रश्न

कौरवों के प्रतिनिधि द्यूत क्रीड़ा विशारद शकुनि के जुआ खेलते हुये पाण्डव नरेश युधिष्ठिर अपना सर्वस्व, अपने भाइयों और अंत में अपने को भी हार गये। इसके बाद कुछ भी शेष न रहने पर वह अपनी पटरानी द्रौपदी को भी हार गये। दुर्योधन का छोटा भाई दुःशासन रजस्वला, एक वस्त्रा द्रौपदी में बाल पकड़ कर घसीटता हुआ राजसभा में खींच लाया। विसम स्थिति में पड़कर भी द्रौपदी ने धैर्य नहीं खोया। उसने राजसभा से प्रश्न किया कि जो व्यक्ति स्वयं को हार चुका है, उसे अपनी पत्नी को दांव पर लगाने का क्या अधिकार है ? युद्ध और द्यूत दोनों में हारजीत होती है, दोनों के नियम होते हैं। द्यूत विद्या विशारद शकुनि और अनभिज्ञ युधिष्ठिर में जुआ खेला जाना धर्म विरुद्ध है। अतएव द्रौपदी को हारा हुआ नहीं माना जा सकता। द्रौपदी की इस आपत्ति का समर्थन दुर्योधन के एक अन्य भाई विकर्ण ने भी किया था। द्रौपदी की धर्म परायणता से प्रभावित हो धृतराष्ट्र ने उसे तीन वर दिये किन्तु द्रौपदी ने धर्म को ध्यान में रखते हुये अपने पतियों को दास्यभाव से मुक्त होने के दो ही वर माँगे।

महा. सभा. 59.21

महा. सभा. 60.5

महा. सभा. 65.11—29, 33, 39, 45

महा. सभा. 67.37

महा. सभा. 68.22—24

महा. सभा. 69.13

द्रौपदी–सत्यभामा संवाद

पाण्डवों के वनवास काल में एक बार कृष्ण अपनी पटरानी सत्यभामा के साथ उनसे मिलने गये। वहाँ बातचीत करते हुये सत्यभामा ने द्रौपदी से जानना चाहा कि वह कैसे अपने पतियों को अपने वश में रखती है ? उत्तर देते हुये द्रौपदी ने कहा कि वह पूरी सावधानी से पाण्डवों की सेवा करती रहती है; कभी अभद्र व्यवहार नहीं करती; सदैव पतियों के अनुकूल व्यवहार करती रहती है'; सदैव धर्मपालन में प्रमाद रहित रहकर तत्पर रहती है। द्रौपदी राजा और रानिवास से सम्बन्धित सभी प्रकार के प्रशासनिक तथा वित्तीय कार्य निष्ठापूर्वक करती थी। इस प्रकार निरंतर सावधान रहकर द्रौपदी अपने पतियों को वश में रखती थी।

महा. वन. 233.19–56

संधि प्रस्ताव ले जाते श्री कृष्ण को द्रौपदी द्वारा सावधान करना

कौरवों ने पाण्डवों को उनका न्याय मुक्त भाग देना तो दूर, माँगने पर पाँच गाँव भी नहीं दिये थे। अतएव बिना राज्य प्राप्त किये दुर्योधन से किसी प्रकार की संधि न की जाये। द्रौपदी ने अपना यह निश्चय श्री कृष्ण को स्पष्ट शब्दों में बता दिया। उसने यह भी कहा कि कौरव साम और दान नीति से मानने वाले नहीं हैं। उन पर दण्ड का प्रहार ही सार्थक होगा "मैने अपरिमित कष्ट उठाये हैं, भरी सभा में अपमानित की गई हूँ, दासी बनाई गई हूँ। सबके सामने दुःशासन ने मेरे बाल खींचे थे। ऐसे आतताइयों को यदि आप लोग दण्ड नहीं देते तो मैं शान्त बैठने वाली नहीं हूँ, मेरे वृद्ध पिता, मेरे महारथी भाई, अभिमन्यु और मेरे पुत्र शत्रु पर अवश्य आक्रमण करेंगे। मेरे हृदय में प्रतिशोध की आग धधकते हुये तेरह वर्ष बीत चुके हैं।" श्रीकृष्ण को कहना पड़ा कि शीघ्र ही वह देखेगी कि उसके शत्रुओं की स्त्रियाँ अपने पति–बान्धवों के शवों पर विलाप करेंगी।

महा. उद्योग. 82.7–45

युधिष्ठिर का राज्य विषयक वैराग्य और द्रौपदी का समझाना

महाभारत युद्ध में हुये भयानक नर संहार को देखकर युधिष्ठिर जीवन और राज्य से विरक्त हो गये। अन्य लोगों के समझाने पर भी जब युधिष्ठिर पर कोई प्रभाव नही पड़ा तब द्रौपदी ने उन्हें समझाते हुये कहा – महाराज, आप राज्य त्यागने की बात कैसे करते हैं ? नपुंसक व्यक्ति ही राज्य और धन का उपभोग नहीं कर सकते हैं। क्षत्रिय को दण्ड त्यागना शोभा नहीं देता, ऐसे क्षत्रियों की प्रजा सुखी नहीं रह पाती। क्षत्रिय का धर्म दुष्टों को दण्ड देना, सत्पुरुषों का पालन करना तथा युद्ध से पलायन न करना है। आपने क्षात्र धर्म का पालन करते हुये अपने बाहुबल से इस पृथ्वी को जीता है। अतएव आप इसका उपभोग करें।

महा. शान्ति. 6.13

महा. शान्ति. 14.1,2,13–16,19,20

कुन्ती द्वारा कर्ण को पाण्डव पक्ष में लाने का प्रस्ताव

(राजमाता की भूमिका)

महाभारत युद्ध की पूर्व संध्या पर पाण्डवों की माता कुन्ती दुर्योधन के मित्र महारथी कर्ण को अपने पक्ष में करने के लिये उसके पास गईं। उन्होंने उसे बताया कि वह राधा और अधिरथ का पुत्र नहीं है। अपितु वह कुन्ती के गर्भ में उत्पन्न सूर्य का पुत्र है। पाण्डव उसके भाई हैं। कुन्ती ने कर्ण को प्रलोभित करने के उद्देश्य से कहा कि तुम पाण्डवों के सबसे बड़े भाई हो। अर्जुन–कर्ण मिलकर शत्रुओं को निश्चय ही परास्त देंगे। विजय के उपरान्त कर्ण ही राजा बनेंगे। कर्ण को दुर्योधन का साथ अवश्य छोड़ देना चाहिये और पाण्डवों के साथ मिलकर राज्य भोग करना चाहिये। किन्तु कुन्ती अपने इस प्रयास में सफल नहीं हुईं। किन्तु कर्ण ने कुन्ती को वचन दिया कि वह अर्जुन को छोड़कर और किसी पाण्डव का वध नहीं करेगा। कुन्ती के प्रयास की यह भी एक सफलता थी।

महा. वन. उद्योग. 145.2–12

महा. वन. उद्योग. 146.18

कुन्ती द्वारा श्री कृष्ण के माध्यम से पाण्डवों को राजधर्म का उपदेश

जब कृष्ण द्वारा रखा गया संधि प्रस्ताव कौरवों ने ठुकरा दिया उस समय कुन्ती ने अपने पुत्रों को राजधर्म पर डटे रहने का संदेश कृष्ण द्वारा भेजा था। कुन्ती का संदेश था – "बेटा, राजर्षि मुचुकुन्द का उदाहरण याद करो और उसी मार्ग पर चलो। राजर्षि मुचुकुन्द ने कुबेर द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य स्वीकार नहीं किया था। अपने बाहुबल से उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर न्यायपूर्वक राज्य किया था। ऐसा ही तुम भी करो। राजा काल का कारण होता है, वही अपनी राजनीति और शासन से कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का निर्माण करता है। तुम भी क्षत्रिय धर्म का पालन कर कृत युग का निर्माण करो। साम, दान, भेद, दण्ड जैसे भी हो अपने पैतृक राज्य का उद्धार करो।

महा. उद्योग. 132.9, 10, 16, 17, 32, 34

विदुलोपाख्यान

कुन्ती ने अपने पुत्रों को उत्साहित करते हुये राजमाता विदुला के आख्यान का उदाहरण दिया था। विदुला नाम की एक प्रसिद्ध तेजस्विनी, क्षत्रिय धर्म परायणा रानी थी। उसके पुत्र का नाम संजय था। एक बार वह सिन्धुराज से रणक्षेत्र में पराजित हो गया। पराजित संजय हतोत्साहित होकर घर में निष्क्रिय होकर बैठ गया। विदुला ने उसकी निष्क्रियता पर उसे धिक्कारा तथा युद्ध करने के लिये उत्साहित किया। प्राणों को संकट में डालकर भी तू युद्ध कर। अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ शत्रु की दुर्बलता का पता लगाता रह। थोड़े दिन का यशस्वी जीवन कायर के दीर्घजीवन से अधिक श्रेयस्कर होता है। सफलता–असफलता पर हर्ष–शोक न करते हुये प्राण रहते चेष्टा करते रहना चाहिये। पराक्रम प्रकट करो अथवा वीरगति प्राप्त करो, यही तुम्हारा धर्म है। लाभ–हानि की चिन्ता छोड़कर तू युद्ध में प्रवृत्त हो जा, तू अपना अभीष्ट कर्म कर। कर्म का आरम्भ न करने वाला कभी सफल हो ही नहीं सकता अतएव उठ और कर्म मार्ग पर डट जा। माता से उत्साहित होकर संजय राज्योद्धार के लिये सन्नद्ध हो गया।

इस प्रकार कुन्ती ने भी अपने पुत्रों को उत्साहित करने के लिये संदेश दिया कि क्षत्राणी जिसके लिये गर्भ धारण करतीं और पुत्र को जन्म देती उसका अवसर आ गया है।

महा. उद्योग. 133.10,11, 15–18

महा. उद्योग. 135.27,28

महा. उद्योग. 136.15

महा. उद्योग. 137.10

सन्यास आश्रम में प्रवेश करते समय कुन्ती द्वारा पुत्रों को उपदेश

गृहत्याग कर महाराज घृतराष्ट्र, महारानी गांधारी, विदुर और संजय के साथ वन में जाते समय राज माता कुन्ती ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राजा युधिष्ठिर को समझाते हुये कहा कि वे सबसे छोटे माद्री पुत्र सहदेव का विशेष ध्यान रखें और शेष पुत्रों तथा द्रौपदी को भी संतुष्ट करते रहें। उन्होंने अपने ज्येष्ठ भाई कर्ण को याद करते रहने का स्मरण दिलाया। दुखी होकर पाण्डवों ने अपनी माता को वन में जाने से रोकते हुये कहा कि यदि उन्हें वन में ही जाना था तो महाविनाशकारी महाभारत के युद्ध में पाण्डवों को प्रवृत्त होने का संदेश क्यों दिया था ? हमें क्षत्रिय धर्म पालन करने को क्यों उत्साहित किया था ? कुन्ती ने सारगर्भित उत्तर देते हुये कहा था, "पुत्रो, तुम कष्ट उठाते हुये हतोत्साहित हो रहे थे। जुये में हार जाने पर तुम सभी तिरस्कृत किये जा रहे थे। मेरी पुत्र–बधू भरी सभा में अपमानित की गई थी। हमारा राजवंश नष्ट हो जाये। इन्हीं सब कारणों से मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। तुम्हारे पिता के राज्य में सुख भोग लिया, यज्ञ कर लिया था मुझे पुत्रों द्वारा विजित राज्य भोग की लालसा नहीं है। उपदेश देकर वे वन में प्रवेश कर गईं।

महा. आश्रम. 16.10, 11, 15, 20, 26

महा. आश्रम. 17.1–3, 13–15, 17–20

दासी मंथरा

(दासियों की भूमिका)

अयोध्या की रानी कैकेयी की मंथरा नाम की एक दासी थी। मंथरा, कैकेयी के मायके से उसके साथ आई थी। दासी मंथरा अपनी स्वामिनी के प्रति अत्यन्त अनुरक्त तथा उसकी शुभचिंतक थी। एक दिन उसे कौशल्या की दासी से ज्ञात हुआ कि राम का युवराज पद पर अभिषेक होने जा रहा है। मंथरा को कैकेयी के अनिष्ट की आशंका हुई। वह तुरन्त अपनी स्वामिनी के पास जा पहुँची। उसने कैकेयी को राम के अभिषेक की सूचना दी। उसने यह भी बताया कि भरत को षड़यंत्र पूर्वक ननिहाल भेज दिया गया है। कुशल राजनीति का परिचय देते हुये। मंथरा ने ऐन केन प्रकारेण समझा–बुझा कर कैकेयी को राम के अभिषेक के विरूद्ध कर दिया। मंथरा के सुझाव पर ही कैकेयी ने राम वनवास तथा भरत के अभिषेक के वरदान माँग लिये।

रामा. अयोध्या. 7.1, 2, 11, 13, 20, 26;

वही. 8.पूरा अध्याय;

वही. 9.19–39, 45, 46

ताटका

(नारी सेनापति)

पूर्वकाल में सुकेतु नामक महान यक्ष के ताटका नामक एक पुत्री ने जन्म लिया। ताटका का विवाह सुन्द नाम के दैत्य से हुआ। ताटका में एक सहस्त्र हाथियों के बराबर बल था। ताटका के पुत्र का नाम मारीच था। दोनों ने (ताटका तथा मारीच) मलद तथा करूष नाम के दो समृद्ध जनपदों को उजाड़ दिया था। बाद में श्रीराम से युद्ध करते हुये ताटका ने वीरगति पाई थीं।

रामा. बाल. 24.24–28, 32

25.5–9

26.26

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण : भारत–सावित्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
2. अधिकारी, जी. : डाकूमेण्ट ऑफ हिस्ट्री ऑफ कमयुनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया
3. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, 997, मैकेमिलन कं. ऑफ इण्डिया लि., नई दिल्ली
4. ईटन, जॉन : पोलिटिकल इकोनोमी, 1964, लारेंस एण्ड विजार्ट, लन्दन
5. एनी बेसेण्ट : हिन्टस ऑफ द सटडीज ऑफ द भगवत गीता एण्ड द विजडम ऑफ द उपनिषदस, 1907 थियोसोफीकल सुसाइटी
6. ए. लिंकलेटर (स.) थ्योरीज आफ इण्टरनेशनल रिलेशन्स, मैकमिलन, लन्दन, 1996
7. काणे, (डा.) पाण्डुरंग वामन : धर्मशास्त्र का इतिहास, 1965, हिन्दी समिति, उ.प्र., लखनऊ
8. क्लार्क, लारेंस (नि.) : सोलर सिस्टम एस.चाँद, नई दिल्ली
9. कुलकर्णी, के. आर. : एग्रीकल्चरल मार्केटिंग इन इणडिया 1951, बम्बई
10. कोरोपव्किन, फ्योदोर : प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय, 1982, प्रगति प्रकाशन मास्को
11. कोसाम्बी, डी.डी. : एन इन्ट्रोडक्सन टु द स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, 1956, पोपुलर बुक डिपो, मुम्बई
12. कोसाम्बी, डी. डी. : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन (प्रा.) लि, दिल्ली
13. कौटिल्य (अनु.आर. रामाशास्त्री) : अर्थशास्त्र (अंग्रेजी) वायसराय रोड, चामुण्डीपुरम, मैसूर
14. कौर (डॉ.) सुरजीत : पार्टी जीवन, सी.पी.आई. प्रकाशन, लखनऊ

15. गोपाल सिंह (सं.) : साउथ एशिया – डेमोक्रेसी डिसकोण्टेण्ट एण्ड सुसाइटल कॉनफिलिक्ट्स, अनामिका पब्लिशर्स (प्रा.) लि., अशोक विहार, दिल्ली, 1998
16. गार्डन, स्लेवैल (स.) : द बुक ऑफ नैलिज, एस.चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली
17. गोयल, श्री राम : विश्व की प्राचीन सभ्यतायें विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
18. चट्टोपाध्याय, देवी प्रसाद : लोकयत पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
19. चतुर्वेदी, पं. श्री नारायण (सं.) : हिन्दी विश्व भारती एजूकेशनल पब्लिशिंग कं. लि, लखनऊ
20. चौबे अर्जुन कश्यप : आदि भारत, 1553 वाणी बिहार, वाराणसी
21. ट्रे, जे. : फेमिनिज़्म इन एस. बर्चिल, मैकमिलन, लन्दन, 1996
22. ठाकुर (डॉ.) लक्ष्मी दत्त : प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन, 1965, हिन्दी समिति, उ.प्र. लखनऊ
23. डांगे, एस.ए. : इण्डिया : फ्रॉम प्रिमिटव कम्यूनिज्म टु स्लेवरी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
24. डांस, ई. एच. : इतिहास एक प्रवंचना, 1967 हिन्दी समिति, उ.प्र., लखनऊ
25. तिलक, पं. बालगंगाधरः गीता रहस्य लोकमान्य तिलक मन्दिर, नारायण पेठ, पूना सिटी
26. तुलसीदास : राम चरित मानस गीता प्रेस, गोरखपुर
27. थपल्याल, किरण कुमार, शुक्ला (डा.) संकटा प्रसाद, : सिन्धु सभ्यता, 1976 उ.प्र. हिन्दी गंथ अकादमी, लखनऊ
28. थापर, रोमिला : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1983 पेंग्यून बुक्स
29. थामस, पी. : इण्डियन वूमन थ्रू द एजेज, 1964 एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई
30. (डॉ.) देवराज : भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), 1966, हिन्दी समिति,

उ.प्र, लखनऊ

31. धर्मशास्त्र (पुराना–नया धर्म नियम) ओल्ड टेस्टामेण्ट, बाइबिल सुसाइटी ऑफ इण्डिया, बंगलौर
32. निघण्टु–निरुवत, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली
33. नेहरु, जवाहरलालः विश्व इतिहास की झलक सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली
34. परमार, श्याम : भारतीय लोक साहित्य, 1954 राजकमल प्रकाशन लि., दिल्ली
35. द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (वूमन इन मॉडर्न इण्डिया), कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1966
36. पामदत्त, आर. : इण्डिया टु डे एण्ड टुमारो, 1955 पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लि., दिल्ली
37. पामदत्त, आर. : फासिज्म एण्ड सोशल–रिवोल्यूशन, 1949, नेशनल बुक ऐजेन्सी कोलकाता
38. पुराण–भागवत, अग्नि, भविष्य, वृह्द्धर्म, हरिवंश, गीता प्रेस, गोरखपुर
39. प्रेमचन्द्र : गोदान, स्वरस्वती प्रेस, दरियागंज, नई दिल्ली
40. फास्टर, हाल (सं.) : पोस्ट मॉडर्न कल्चर प्लेटो प्रेस, लन्दन
41. बक्सी (आ.) पदुमलाल पुन्नालाल : मेरा देश विद्यामन्दिर प्रकाशन, राजनंदगांव (म. प्र.)
42. बनर्जी, आर. डी. दि एज ऑफ दि इम्पीरियल गुप्ताज, 1933, बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, वाराणसी
43. बुकानन, डेनियल हाउस्टन : द डिवलपमेण्ट ऑफ कैपिटलिस्ट इण्टरप्राइज इन इण्डिया, 1966
44. बिशप, जॉन : ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म इन इण्डिया, 1934, माटिन लारेंस, लन्दन

45. मनुस्मृति, चौखम्भा संस्कृति सीरीज, वाराणसी

46. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर

47. मार्क्स–एंगिल्स : संकलित रचनायें प्रगति प्रकाशन, मास्को

48. मैक्डोनल्ड, ए.ए. : वैदिक पुराकथा शास्त्र, 1961 चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

49. मैक्डोनल्ड तथा कीथ : वैदिक इण्डेक्स, 1962 चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

50. यूनाइटिड नेशन्स डिवलपमेण्ट प्रोग्राम, 1996

51. रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर

52. राघव, रांगेय : प्रचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, 1953, आत्माराम एण्ड संस, देहली

53. राज किशोर (सं.) : स्त्री के लिये जगह वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

54. राबर्ट जैक्सन एण्ड जार्ज सोरेसन : इन्ट्रोडक्शन टु इण्टरनेशनल रिलेशन्स, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस

55. लैंग सैम, वाल्टर कांसथेली : द वर्ल्ड सिंस 1914, 1943, मैकमिलन, न्यूयार्क

56. वर्मा, वी.पी. : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, 1983, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा

57. व्यास, शान्तिकुमार नाथूराम : इण्डिया इन द रामयण रज 1967, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

58. व्हीलर, हेराल्ड : दिस थिंग कॉल्ड हिस्ट्री मैकडोनल्ड एण्ड कं. लि., लन्दन

59. वेद–ऋग्वेद, अर्थर्ववेद दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, नई दिल्ली

60. वेपर, सी.एल. : पालिटिकल थॉट

61. वैश्य, एम.सी. : आर्थिक विचारों का इतिहास, द्वितीय संस्करण, रतन प्रकाशन मन्दिर हास्पिटल रोड, आगरा

62. शर्मा (पं.) श्री राम आचार्य : वायु पुराण की भूमिका संस्कृति संस्थान, बरेली

63. शेविल, फर्डीनैण्ड : ए हिस्ट्री ऑफ योरोप (फ्रास रिफोर्मेशन टु द प्रजेण्ट डे), 1948 हरकोर्ट ब्रेस एण्ड कं., न्यूयार्क

64. सक्सेना (डॉ.) जयदयाल : भारत की पौराणिक कथायें (वैज्ञानिक विवेचन) किताब महल, इलाहाबाद

65. सरस्वती, दयानन्द : ऋग्वेद की भूमिका तथा अनुवाद, दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, नई दिल्ली

66. स्मृतियां–मनु, नारद, याज्ञवाल्क्य चौखम्भा संस्कृत सीरि, वाराणसी

67. स्वामी विवेकानन्द : कम्पलीट वर्क्स, आठ जिल्दें अद्वैत आश्रम, अलमोड़ा

68. होमर, ओडेस्सी

पत्र–पत्रिकायें

1. अमर उजाला, कानपुर
2. आज, कानपुर
3. कथन (त्रैमासिक), नई दिल्ली
4. कल्याण (वेद कथांक), गोरखपुर
5. जागरण, कानपुर
6. टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
7. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
8. भारत अश्वघोष, नई दिल्ली
9. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ
10. लोक लहर, नई दिल्ली
11. समकालीन सोच, गाजीपुर
12. हिन्दुस्तान, लखनऊ